सिद्ध योग

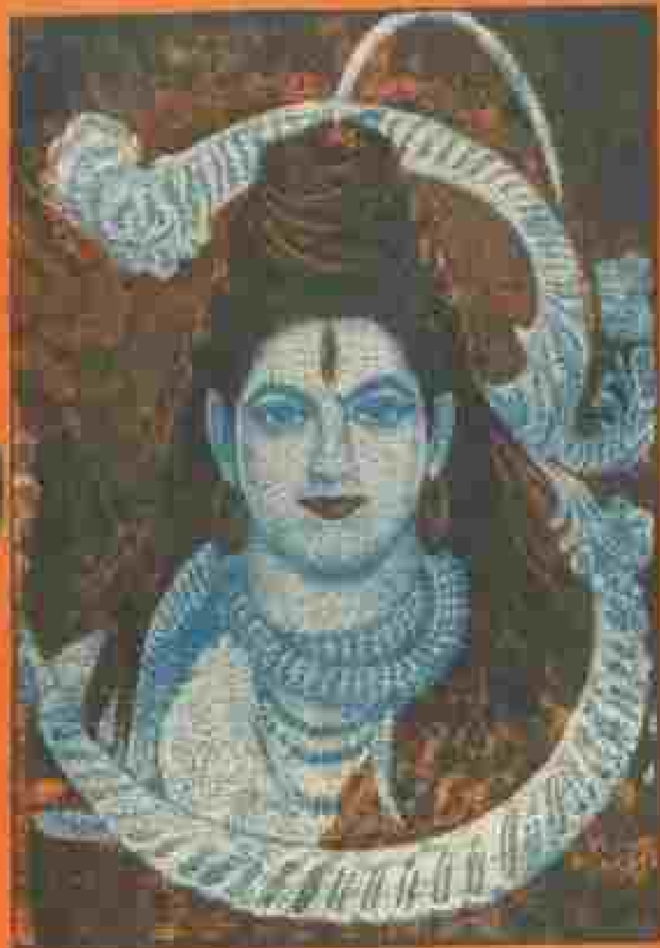

• संस्थापक-सम्पादक :-
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सँवाई. आगरा

वर्ष १८
अंक १

५

इस अंक में—

प्रकाशक

श्री सिद्धगुफा, सवाई

- योग ही मुक्ति का साधन है — १
- समाधि और संयम (विशेष लेख) — २
  योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज
- अपने को सुन्दर बनाइये — ७
  एक सन्त की मंजुलवाणी
- प्रकृति में विकृति-रोगों की उत्पत्ति — ९
  श्री गुलशनकुमार
- दीपावली का स्वरूप — १४
  श्री विष्णु प्रसाद व्यास
- सिद्धयोग के अनुभवी महात्मा ईशु — १९
  डा० श्री विजयसिंह
- विलक्षण मंत्रोपदेश — २३
  श्री केशव उपाध्याय
- योगासन द्वारा रोग निवारण — २५
  डा० श्री विजय शङ्कर उपाध्याय
- ओंकार ध्यान — २८
  श्री गौतम अग्रवाल
- सर्व समष्टि परिचय — २९
  डा० श्री जीवनलाल शर्मा
- दीप के प्रति — ३०
  श्री अशोक 'व्याकुल' (कविता)
- मुद्रा और बन्ध — ३५
  योगी श्री दीवान, गोकुलचन्द्र कपूर
- कबीर के समकालीन सिद्धयोगी बाबा गोरखनाथ — ३७
  श्री शिवराम सागर
- महामाया — ४०
  श्री डी० के० उपाध्याय
- पत्र-पुष्प-फलं-तोयम् — ४३
- पूज्य श्री गुरुदेवजी का जन्मदिवस समारोह — ४५
- साहित्य-परिचय — ४८

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

दिसम्बर १९८५

वार्षिक मूल्य-२५ रुपया। इस अङ्क का २ रुपया

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिकपत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, रुनाई (एत्मादपुर) आगरा।

वर्ष १८ अङ्क ६	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्, भक्तो मुक्तोमुक्ष विचरतो, मुक्तिं प्राप्नोति सद्यः। तत्त्वावाप्त्यर्थं बहुविषयं योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥	दिसम्बर १९८५

❁ योग ही मुक्ति का साधन है ❁

द्वौ क्रमौ चित्त नाशस्य योगो ज्ञानं मुनीश्वरः।
योगस्तद्वृत्ति रोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥
तस्मिन्निरोधिते नूनमुपशान्तं मनो भवेत्।
मनः स्पन्दोपशान्त्यायं संसारः प्रविलीयते ॥

अर्थात्

हे मुनीश्वर चित्त के नाश करने के लिए योग और ज्ञान दो क्रम हैं। योग से चित्त-वृत्ति की रुकावट होती है और ज्ञान से यथार्थ वस्तु का बोध होता है।

निश्चय ही चित्त वृत्तियों के निरोध से मन शान्त हो जाता है और मन की चञ्चलता शान्त होने से यह संसारी प्रपञ्च छूट जाता है।

संसारी प्रपञ्च छूट जाने पर मनुष्य निश्चय ही मुक्ति पथ पर अग्रसर हो जाया करता है।

—यो० शिखोपनिषद्

हमारा विशेष लेख—

समाधि और संयम

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग दर्शन में भगवान पतञ्जलिदेव जी ने अष्टांग योग का वर्णन किया है। अष्टांग योग की साधना एक ऐसी साधना है जिसे करने वाला व्यक्ति अवश्य ही समाधि द्वार तक पहुँच जाया करता है किन्तु फिर भी अष्टांग योग के पाँच अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार इन्हीं को बहिरंग अंग ही माना है क्योंकि इन सब की साधना साधक बहिर्मुखी वृत्ति रखते हुये भी कर सकता है। पर धारणा ध्यान और समाधि को मनुष्य अन्तर्मुखिता प्राप्त किए बिना सिद्ध नहीं कर सकता। धारणा ध्यान और समाधि का विषय एक ऐसा विषय है जो एक दूसरे के साथ सम्बद्ध है।

धारणा ध्यान और समाधि की साधना मनुष्य को सोपान क्रम से करनी ही पड़ती है। यदि कोई साधक इस साधन क्रम को नहीं अपनाता तो उसका समाधि द्वार तक पहुँचना कठिन ही नहीं प्रत्युत नितान्त असम्भव ही रहता है। यह दूसरी बात है कि हिमालय की गहन गुफाओं में छिपकर बैठने वाले सर्व समर्थ अष्ट सिद्धि ऐश्वर्य सम्पन्न योगेश्वरों की कृपा से कोई शक्तिपात दीक्षा पाकर सहज में बिना ही किसी प्रयास के समाधि को पा जाय। किन्तु प्रयत्नशील साधक को साधन योग का ही विद्यार्थी है उसको भी समाधि की उच्चतम् स्थिति दृढ़ भूमि संयम को प्राप्त करने के लिए साधन क्रम को ही अपनाना पड़ेगा। यथार्थ में तो पूरी तरह से पूर्णता पाने के लिए उच्चतम अधिकारी साधक को अष्टांग योग के सभी साधनों को सोपान क्रम से करना ही चाहिए। उच्चतम एवं दृढ़तर सफलता का आधार तो सोपान क्रम ही है। प्रथम कक्षा में पढ़ने वाला एक विद्यार्थी ठीक और ठोस विद्वान तो तभी बनेगा जब वह अच्छे अंक प्राप्त करते हुये क्रमशः सोपान क्रम के ढंग से अपनी श्रेणियों को पार करता चला जावे। जो लोग अपने छात्रों को पहली, दूसरी, तीसरी श्रेणियों से क्रमबद्ध सोपान क्रम से अपने विद्यार्थियों को नहीं निकालते और यथा-तथा रिश्वतों से या बड़ी-बड़ी सिफारिशों से प्रभावित होकर अपने विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र दिलवा देते हैं वे विद्यार्थी प्रमाण-पत्र तो ले लेते हैं किन्तु अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह

की योग्यता समुचित नहीं प्राप्त हो पाती। योग-साधना भी एक प्रकार की एक ठोस पढ़ाई है जो उत्तम साधक अष्टांग योग का क्रमशः अभ्यास करता है और यम-नियमों की साधना को विधिवत् निभाता है उसकी आधार भित्ति पूर्ण रूपेण पुष्ट हो जाया करती है। हमारे शास्त्रीय सिद्धान्तों में ब्रह्मचर्य पर बड़ा बल दिया गया है। ऋषि पद्धति के अनुसार ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन प्राचीन काल में गुरुकुलों में कराया जाया करता था। गर्भावस्था से ही बच्चों के अन्दर उत्तमोत्तम संस्कार भरने की चेष्टा की जाया करती थी इसी कारण से गर्भाधान, पुंसवन एवं नामकरण आदि सोलहों संस्कार विधि विधान पूर्वक नियमानुसार कराये जाते थे। आठ साल की अवस्था से पहले ही बच्चों को संयमी व गुरुकुलों में छोड़ दिया जाया करता था जिसका फल यह निकलता था अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि गुरुकुल की नियमावली में सम्बद्ध होने के कारण स्वतः ही परिपालित होते थे। उनकी आधार भित्ति इतनी सबल हो जाती थी कि वे लोग अपने जीवन में कभी भी निराशा को नहीं देखते थे। आसन, प्राणायाम और धारणा, ध्यान, समाधि ब्रह्मचर्य आश्रम में सभी बिना किसी प्रयास के परिपालित होते थे। आजकल के इस युग में यद्यपि इस प्रकार की नियमावलियों को चलाना कुछ कठिन सा बन गया है किन्तु फिर भी एक साधक जो अष्टांग योग का क्रमशः पालन करने में अपने आपको असमर्थ देखता है तो कम से कम उसको धारणा ध्यान समाधि आदि का तो क्रमशः अभ्यास कर ही लेना चाहिए जिससे वह साधक अपने मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य को पूर्ण रूपेण प्राप्त कर सके। धारणा ध्यान आदि का नियमानुसार साधन करने से साधक स्वतः ही समाधि द्वार तक पहुँच जाता है। धारणा के विषय का स्पष्टीकरण करते हुये भगवान पतञ्जलिदेव धारणा का लक्षण इस प्रकार लिखते हैं।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात् गुरुदेव के द्वारा उपदिष्ट किसी भी लक्ष्य स्थान में मन को बांध देना धारणा कहलाती है। धारणा के दो प्रकार हैं। बाह्य धारणा और अभ्यान्तर धारणा। बाह्यधारणा स्थूल विषय है अतः सभी साधकों का झुकाव बाह्य धारणा की ओर ही प्रायः रहा करता है बाह्य धारणा करने वाले साधक त्राटक को अपनाते हैं। सर्वोपरि किसी भी दृश्य को आँखों के द्वारा निश्चल भाव से बराबर देखते रहना त्राटक कहलाता है। यह त्राटक साधक समुदाय अनेक प्रकार से करते हैं। भगवान राम—भगवान कृष्ण या भगवान शिव आदि की तस्वीरों पर खुली आँखों से देखते रहना बाह्य त्राटक कहलाता है। इसका परिणाम यह निकलता है। शनैः शनैः अभ्यास क्रम से बढ़ता हुआ मनुष्य सौंत्राटक तक पहुँच

जाता है और वह अपने आस पास दिव्य तेज को अनुभव करने लगता है। शनैः शनैः वही दिव्य तेज ध्यान के रूप में बदल जाया करता है और समाधि स्थिति तक ले जाया करता है इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यासदेव ने धारणा के स्थानों का इस प्रकार वर्णन किया है—

नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि-ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्धा-ज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र यह सब स्थान बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त हमारे अन्यान्य आचार्यों ने धारणा के लिए मेरुदण्ड के अन्दर होने वाले षट्चक्र जिह्वामूल जिह्वा-मध्य तालु आदि-आदि और भी धारणा के स्थानों का वर्णन किया है। किन्तु इन सभी स्थानों में धारणा करने के लिए भगवान व्यास देव जी ने यह स्पष्ट आदेश दिया है कि:—

इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात् इन सब स्थानों में या इनके अतिरिक्त अन्य किसी बाह्य विषय में भी मन की कल्पना मात्र से ही चित्त को बांधना धारणा कहलाती है। मनुष्य शास्त्र विधि से यदि धारणा करता है तो नाभिचक्र में धारणा करने से वही धारणा अपने आप ध्यान के रूप में बदल जायगी। उसका परिणाम यही निकलेगा कि साधक को काया व्यूह की रचना का ज्ञान स्वतः ही होने लगेगा। हृदय कमल में धारणा करने से परम सत्य का साक्षात्कार होगा।

मूर्धज्योति में धारणा करने से प्रणव तत्त्व अर्थात् सद्गुरुतत्त्व का साक्षात्कार होगा या सिद्धों के दर्शन होने लगेंगे। नासिकाग्र में धारणा करने से ध्यान के रूप में परिवर्तित हुई यह धारणा अवश्य ही दिव्यावलोकन कर पायेगी। जो लोग जिह्वाग्र में धारणा का अभ्यास करते हैं उनको रसानुभूति अपने आप ही होने लगती है। यह धारणा ही समय पाकर ध्यान रूप में बदल जाया करती है। ध्यान का लक्षण भगवान पतञ्जलि देव इस प्रकार बतलाते हैं:—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

अर्थात् जिस विषय को लक्ष्य करके हम धारणा कर रहे थे उसमें मन बिल्कुल भी विचलित न हो, तैलधारावत् निरन्तर चलता रहे, उसी का नाम ध्यान है। ध्यान का निरन्तर अभ्यास करते रहने पर ध्येय वस्तु बिल्कुल स्पष्ट दीखने लगती है। भगवान व्यास देवजी महाराज ने इस ही भावों को भाष्य की दो पंक्तियों में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है जैसे:—

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता-सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।

अर्थात् ध्याता साधक जिस ध्येयवस्तु का ध्यान कर रहा है, मन एक धारा से उसमें लगा रहे। दूसरा कोई विचार भी अभ्यास काल में मन में पैदा न हो तो समझ लेना चाहिए कि साधक का ध्यान परिपक्व हो गया है। जब साधक इसी प्रकार नियमानुसार ध्यानाभ्यास करता है तो वही ध्यान समाधि के रूप में बदल जाया करता है। जैसा कि भगवान पतञ्जलिदेव ने दिग्दर्शन किया है:—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते।

अर्थात् जिसका हम अभी तक ध्यान कर रहे थे उसमें तीन वस्तुएं अलग-अलग दिखाई दे रही हैं। ध्याता, ध्येय और ध्यान। ध्यान का निरन्तर अभ्यास करने के बाद स्थिति इस प्रकार की आ जाया करती है जब ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला साधक ध्येयाकार में बदल जाया करता है। थोड़ी देर के लिए उदाहरण रूप से इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए। जैसे ध्यान करने वाला एक साधक अपने इष्टदेव भगवान श्री कृष्ण, श्रीराम अथवा भगवान श्री शङ्कर का ध्यान कर रहा है। इस प्रकार ध्यान करने वाला एक साधक ध्याता के रूप से बदलकर के ध्येयाकार से भासित होने लगे। साधक को अपना ध्याता होने वाला ज्ञान बिल्कुल भूल जाए, वह यह समझने लगे कि मैं स्वयं शिव ही हूँ, ऐसे ज्ञान को समाधि कहते हैं। जो साधक अपने इष्टदेव के स्वरूप में तल्लीन हो करके ध्येयाकार में देखने लगे। तो समझ लेना चाहिए कि उसको समाधि हो गई। किन्तु यह समाधि सम्प्रज्ञात समाधि है। जब तक माया का बीज बना रहेगा। तब तक यह सम्प्रज्ञात सबीज समाधि ही कही जायेगी। सबीज निर्बीज आदि समाधि के अवान्तर भेद हैं। जिसका हम कालान्तर में दूसरे प्रकरण में वर्णन करेंगे। इससे आगे संयम का विषय आ जाता है। वह इस प्रकार है—

त्रयमेकत्र संयमः।

एक विषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयम इति।

अर्थात् उस समाधि में साधक के पूरा-पूरा निष्णात हो जाने के बाद साधक संयम को पा जाया करता है। संयम का अर्थ है—धारणा ध्यान और समाधि यह तीनों एक विषयक हो जाती हैं अर्थात् धारणा काल में जिस आकृति

पर धारणा करनी आरम्भ की तो धारणा इतनी परिपक्व हो गई कि ध्यान भी उसी आकृति पर बराबर होने लगा। और ज्यों-ज्यों ध्यान का अभ्यास किया गया त्यों उस्साही तद्रूपीभूत आकृति में समाधि हो गई। ये तीनों धारणा, ध्यान और समाधि जब एक ही लक्ष्य में बन जायें तो समझ लेना चाहिए कि मनुष्य को संयम सिद्ध हो गया। इन तीनों साधन क्रम का नियम संयम सिद्ध करने के लिए इस प्रकार है—साधक अपने धारणा के अभ्यास काल में तीन घण्टे रोज धारणा को परिपक्व करता रहे और जब वह धारणा, ध्यान के रूप में बदल जाए तब तीन घण्टे रोज उस ध्यान का अभ्यास करता रहे और जब वह ध्यान ध्येयाकार में परिवर्तित होकर समाधि के रूप में बदल जाय तो साधक को चाहिए कि नित्य तीन घण्टे समाधि का अभ्यास करे। जब एक साधक तीन घण्टे नित्य समाधि के अभ्यास में लीन रहता है तो उसको संयम सिद्ध हो जाया करता है। संयम सिद्ध हो जाने पर यदि साधक अपने अभ्यास क्रम को नहीं बदलता, संयम भी रोज तीन घण्टे बराबर करता चला जाता है तो वह साधक संयम पर विजय प्राप्त कर लेता है। भगवान पतंजलि देव जो आदेश करते हैं:—

तज्जयात् प्रज्ञाऽऽलोकः।

व्यासभाष्य की पंक्तियां—

तस्य संयमस्य जयात्समाधि प्रज्ञया भवत्यालोकः यथा-यथा संयमः स्थिर-पदो भवति तथा-तथा समाधिप्रज्ञा विशारदी भवति।

अर्थात् संयम के सिद्ध हो जाने पर साधक को स्फुट प्रज्ञालोक हो जाया करता है। स्फुट प्रज्ञालोक हो जाने के बाद साधक यथार्थता का ज्ञाता बन जाया करता है। और इस प्रकार संयम का दृढ़तर अभ्यास परिपक्व हो जाने के बाद साधक जहाँ-जहाँ अपने संयमित मन को लगायेगा वहाँ-वहाँ अवश्य ही सफलता लाभ करेगा। यही समाधि और संयम का उत्कृष्ट फल है जिससे मनुष्य अन्तरजगत का पूरा-पूरा ज्ञाता बन जाया करता है।

❀ मुक्तक ❀

लक्ष्य की संजीवनी पीकर जगे हैं मूर्छना से।
युगपती लक्ष्मण वही, सोये नहीं जो चेतना से।
ध्वंस की लीला चुनौती दे रही अब सर्जना को-
प्राण, अमृत - छन्द गाते, रागमय, सम्वेदना से।

—श्री लाखनसिंह भदौरिया, सौजपुरा मैनपुरी

अपने को सुन्दर बनाइये

✽ एक सन्त की मङ्गलवाणी

अपने को सुन्दर बनाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शरीर श्रमी हो, कारण कि शरीर के श्रमी होने से आवश्यक कार्य पूरे हो जाते हैं और अनावश्यक कार्य मिट जाते हैं। अनावश्यक कार्य मिटते ही मन संयमी हो जाता है, मन के संयमी होने पर बुरे सङ्कल्प मिट जाते हैं और भले सङ्कल्प पूरे हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों संयम सबल तथा स्थाई होता जाता है, त्यों-त्यों शुद्ध सङ्कल्पों की पूर्ति का सुख मिटता जाता है। सङ्कल्प-पूर्ति का सुख मिटते ही निर्विकल्पता आ जाती है। मन के निर्विकल्प होने पर स्वतः विचार का उदय होता है और फिर बुद्धि विवेकवती हो जाती है। विवेकवती बुद्धि वासनाओं के मिटाने में समर्थ है। वासनाओं के मिटते ही हृदय अनुरागी हो जाता है। यह नियम है कि अनुराग अहंभाव को अभिमानशून्य कर देता है, क्योंकि अनुराग का प्रादुर्भाव होते ही किसी प्रकार की चाह शेष नहीं रहती। चाह रहित हो जाने पर अहंभाव स्वतः गल जाता है। अहंभाव के गलते ही जीवन अनन्त नित्य सौंदर्य से परिपूर्ण हो जाता है। इस दृष्टि से शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती और हृदय अनुरागी एवं अहं अभिमान शून्य करना अत्यन्त अनिवार्य हो जाता है।

अपनी सुन्दरता सुरक्षित रखने के लिए यह सभी को मान्य होगा कि सत्य को जीवन में सभी से उत्कृष्ट स्थान दिया जाय। यह तभी सम्भव होगा, जब हम अपने को सिक्के की दासता से मुक्त कर सकें। सिक्के की दासता ने ही आलस्य, विलास तथा अभिमान को जन्म दिया है, जिससे चरित्रहीनता के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिला, जो सुन्दरता को सुरक्षित नहीं रहने देती। यद्यपि सिक्के का जीवन के लिए कोई विशेष मूल्य नहीं है, वह केवल आदान-प्रदान का साधन, अर्थात् माध्यममात्र है। इस दृष्टि से सिक्का वस्तु-उत्पादन का साधन मात्र है, और कुछ नहीं। वस्तु का उत्पादन सिक्के को संग्रह करने के लिए नहीं है, प्रत्युत व्यक्तियों की रक्षा के लिए है और व्यक्ति का जीवन विवेकपूर्ण सत्य को प्राप्त करने के लिए है, कारण कि इस असत् का त्याग और सत्य की प्राप्ति मानव का उद्देश्य है, इसी दृष्टि से सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से

विवेक एवं विवेक से सत्य को अधिक महत्व देना अनिवार्य है, जो चरित्र निर्माण का हेतु है। इतना ही नहीं, सच्चरित्र होने के लिए व्यर्थ चिंतन का त्याग एवं वर्तमान का सदुपयोग करना अत्यन्त अनिवार्य है। वर्तमान का सदुपयोग का अर्थ है सुख-दुःख का सदुपयोग और व्यर्थ चिंतन के त्याग का अर्थ है, सार्थक चिंतन अर्थात् तत्व चिंतन एवं भगवच्चिन्तन का उदय होना। सुख का सदुपयोग विरक्ति है। उदारता आ जाने पर प्राणी सुख भोग के बन्धन से मुक्त हो जाता है और विरक्ति आ जाने पर आत्मानुरक्ति अथवा परम प्रेम की जागृति स्वतः होती है, जिसके होने से जीवन अनन्त नित्य सौन्दर्य से सम्पन्न हो जाता है, अथवा यों कहो कि सब प्रकार की अभावों का अभाव होकर पूर्ण हो जाता है, अथवा कहो कि जीवन जड़ता, पराधीनता, शक्तिहीनता आदि दोषों से रहित होकर अनन्त-नित्य चिन्मय परम तत्व से अभिन्न हो जाता है, जो मानव का उद्देश्य है। अतः चरित्र निर्माण करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि चरित्र-निर्माण के लिए ही मानव-जीवन मिला है।

सुख-दुःख का सदुपयोग साधन का मूल है। वह तभी सम्भव होगा, जब सुख-दुःख को जीवन न मानकर उसे साधन-सामग्री मान लिया जाय। मानव-जीवन में सुख-दुःख के उपभोग का कोई स्थान ही नहीं है, कारण कि सुख-दुःख तो पशु-पक्षी आदि भी भोगते हैं। मानव-जीवन तो सुख-दुःख के बन्धन से मुक्त होकर पवित्र प्रेम तथा अमर-जीवन की प्राप्ति के लिए मिला है। वास्तव में ऐसा साधनयुक्त जीवन ही मानव-जीवन है।

मुक्तक

मैं गरीब, सखे, गरीब मिजाज का हूँ।
मैं सनातन हूँ, नहीं मैं आज का हूँ।
मैं अनन्त, अपार क्षमता पूर्णता की-
अश्रु-बिन्दु मनुष्यता, और दर्द समाज का हूँ।
सत्य में गीत नहाकर गा रहे हैं।
जिन्दगी, मथकर, बहाकर, गा रहे हैं।
प्यार-पीड़ा से हरा उद्यान रखकर।
आँसुओं को, मुस्काराकर, गा रहे हैं।

—श्री लाखनसिंह भदौरिया, भीखपुर मैनपुरी

प्रकृति में विकृति—रोगों की उत्पत्ति

श्री गुलशनकुमार

प्रकृति है क्या ? क्या प्रकृति को आज तक कोई समझ पाया है ? इसका उत्तर हमें दोनों रूपों में मिलता है—नकारात्मक भी और सकारात्मक भी। अगर हम हर होने वाले कार्य को, हर घटित होने वाली घटना को, हर बीते क्षण को, हर आने वाले कल को एवं हर संभावित प्रश्न को प्राकृतिक रूप से देखने की कोशिश करें और विकार रहित मस्तिष्क से उसे समझने की कोशिश करें तो हर चीज का सही-सही रूप हमारे सामने उभरने लगता है अर्थात् हम उसकी प्रकृति को पहचानने लगते हैं। निष्कर्षतः 'जो सम है वही प्रकृति है।' परन्तु यदि इन सबके संदर्भ में हमारी दृष्टि मलिन हो जाये या मस्तिष्क में विकार आ जाये अर्थात् हमारी प्रकृति में विकृति आ जाये तब मानसिक रूप से हम रोगग्रस्त हो जाते हैं और तब गलत धारणायें गलत मान्यतायें एवं गलत निष्कर्ष पैदा होते हैं तथा सृष्टि का समस्त तालमेल ही नष्ट होता हुआ दिखाई देता है। वस्तुतः सृष्टि के तालमेल के लिये और सृष्टि जीवियों के सुख एवं शान्ति के लिये न केवल प्रकृति का प्राकृतिक रूप में रहना जरूरी है बल्कि प्रकृति के साथ सृष्टि जीवियों का भी प्राकृतिक तादात्म्य जरूरी है और सृष्टि जीवी प्रकृति को प्राकृतिक दृष्टिकोण से तभी देख सकते हैं, जब वह पूर्णरूपेण प्राकृतिक हों अर्थात् उनके मनोमस्तिष्क निर्मल एवं विकार रहित हों, उनकी दृष्टि उज्ज्वल हो तथा वे शारीरिक रूप से भी स्वस्थ हों।

अब प्रश्न उठता है—स्वस्थ कौन है ? स्वस्थ किसे कह सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर हमारे आयुर्विज्ञों ने बहुत ही सुन्दर एवं सम्पूर्ण रूप में इस प्रकार दिया है—

" समदोषः समाग्निश्च
समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना
स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ "

अर्थात् जिसके शरीर में 'वात-पित्त-कफ' ये तीनों दोष, 'पाचकाग्नि-जठराग्नि' आदि पाँचों अग्नियाँ, 'रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र' ये सातों धातुयें एवं मलक्रियायें सामान्य हों तथा जिसकी 'आत्मा-इन्द्रियाँ और मन' प्रसन्न हों वही स्वस्थ माना जाता है। वस्तुतः न केवल शारीरिक रूप से अपितु मानसिक एवं आत्मिक दृष्टि से भी सामान्य होना 'स्वस्थ' शब्द की पूर्णता को दर्शाता है।

हमारे 'विश्व-स्वास्थ्य-संगठन W.H.O.

ने Health को इस प्रकार परिभाषित किया है—"Health is a State of Complete Physical Mental & Social Well-Being and not merely an absence of Disease or Infirmity"

अर्थात् शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से सामान्य होने की अवस्था ही स्वास्थ्य है, केवल बीमारी की अनुपस्थिति ही नहीं। वास्तवः किसी जीव का प्राकृतिक रूप ही स्वस्थता का प्रतीक है।

अब प्रश्न उठता है—असामान्य या अप्राकृतिक क्या है और उस दशा को हम क्या नाम या परिभाषा देते आये हैं। प्राणी में विकृति की अवस्था को अर्थात् 'सम' अवस्था से विचलन को किसी ने रोग कहा है। उदाहरणतः आयुर्वेद ने रोग को इस प्रकार परिभाषित किया है—

"रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा
देहस्य चेष्टाहरा।
दृष्टा इन्द्रियशक्ति संक्षयकरा
सर्वाङ्ग पीडाकराः।
धर्मार्थाखिल काममुक्तिषु
महाविघ्न स्वरूपाबलात्।
प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि
ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम्॥"

अर्थात् रोग प्राणियों के शरीर को कृश करने वाले, बल का ह्रास करने वाले, देह की चेष्टा हरने वाले, दृष्टि आदि इन्द्रिय शक्ति को क्षीण करने वाले समस्त अंगों में पीड़ा करने वाले, धर्म अर्थ-काम-मोक्ष की सम्पूर्णता के विषय में महाविघ्नकारी और बलपूर्वक प्राणों का नाश करने वाला होता है, Oxford English Dictionary में रोग (Disease) को इस प्रकार परिभाषित किया है—

"Disease is a Condition of the Body or Some Part or Organ of the Body in Which the Functions are Disturbed or Deranged."

अर्थात् रोग शरीर या शरीर के किसी भाग अथवा अंग की वह अवस्था है, जिससे उसके कार्य विकृत हो जाते हैं। इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं में यही परिलक्षित होता है कि सामान्य होना ही स्वास्थ्य की पहचान है और सामान्य से विचलन अर्थात् असामान्य अवस्था ही विकारजनक होती है और ये विकार ही रोग की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। रोग प्राणधारियों का हरण करते हैं, उनके प्राणों का नाश करते हैं अतः प्राणों की रक्षा करना हर जीवधारी का कर्त्तव्य भी है और एक मूल इच्छा भी।

अब प्रश्न उठता है, सामान्य क्या है और असामान्य क्या है? जो प्रकृति ने हमें दिया है, जिसका प्रकृति के साथ पूर्ण रूप से तादात्म्य है वही सामान्य है अर्थात् प्राकृतिक स्वरूप में होना ही 'सामान्य' अवस्था है और प्राकृतिक स्वरूप से भिन्नता ही

असामान्य अवस्था है अर्थात् जो अप्राकृतिक है वह 'असामान्य' है। ये एक मूल सिद्धान्त है कि हर जीव में एक शक्ति होती है और यह शक्ति प्रकृति उसे देती है, उसकी अपनी रक्षा के लिये, ताकि वह अपने सामान्य स्वरूप को बिगड़ने न दे। परन्तु जब प्रकृति में विकृति आती है या उस जीव की शक्ति क्षीण होने लगती है तब-तब ही असामान्य अवस्था आ जाती है।

अब बात आती है कि ये शक्ति क्या है और कैसे ये प्रकृति प्रदत्त शक्ति जीव को सामान्य बनाये रखने का यथासंभव प्रयास करती है? यदि आप एक जीवाणु से लेकर एक विकसित मनुष्य तथा एक अंडे से लेकर समुचित प्राणी तक का अध्ययन करें तो हर जगह यही बात परिलक्षित एवं प्रमाणित होती है कि प्रकृति प्रदत्त ये शक्ति ही सामान्य को सामान्य बनाये रखने का यथासंभव प्रयास करती है। उदाहरणतः हम मनुष्य ही को ले तो देखते हैं कि मनुष्य के भ्रूण तक की रक्षा के लिये प्रकृति ने गर्भाशय बनाया और वहां उसके पोषण के संरक्षण के लिये विशेष प्रकार की रचनाओं का निर्माण किया। फिर गर्भ में पड़ी हुई नन्हीं सी जान के बारे में सोचे, जिसे सुध का ज्ञान नहीं, बाह्य जगत का अहसास नहीं, फिर भी कितना निश्चिंत सा गर्भाशय में पड़ा रहता है। ये शक्ति जहाँ रक्षा करती है वहीं विकास में भी सहायक होती है। बाह्य जगत में प्रवेश करते ही बच्चा रोग के असंख्य कीटाणुओं से घिर जाता है। इन सब से लड़ने के लिये अपनी-रक्षार्थ प्रकृति ही उसे प्रदान करती है—'प्रतिरोध क्षमता' (जिसे हमारे आधुनिक वैज्ञानिकों ने Natural Immunity कहा है।) यह बच्चे में माँ के दूध द्वारा आती है और यही दूध बच्चे का पोषण भी करता है जिससे उसका विकास होता है। उसकी यह शक्ति कम होने लगती है (जो माँ के दूध द्वारा आती थी) तब बच्चे में रोग से लड़ने का अपने आप को सामान्य बनाये रखने का 'नया प्रतिरोध' उत्पन्न होने लगता है, जिसे वैज्ञानिकों ने Acpuired Immunity कहा है। जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता जाता है, उसकी बुद्धि विकसित होती जाती है और सोचने समझने की शक्ति बढ़ती जाती है उसी प्रकार उसकी 'रोग-प्रतिरोधक क्षमता' भी बढ़ती जाती है, परन्तु एक निश्चित समय के पश्चात अर्थात् वृद्धावस्था आने पर यह कम होने लगती है। ये सब प्राकृतिक है। परन्तु जब भी प्रकृति में विकृति आती है अर्थात् प्राकृतिक अवस्था अप्राकृतिक होने लगती है और रोग से लड़ने की शक्ति क्षीण हो जाती है तब रोग के कीटाणु या रोग के कारण प्रभावी हो जाते हैं और व्यक्ति रोग से पीड़ित हो जाया करता है। बाह्य वातावरण परिवर्तनीय है और परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जब भी मनुष्य इन परिवर्तनों के अनुकूल नहीं

चलता अर्थात् प्रकृति का साथ छोड़ देता है तो वह विभिन्न प्रकार की व्याधियों से ग्रसित हो जाया करता है।

अब एक और प्रश्न उठता है कि प्रकृति यदि रक्षा करती है तो उसने रोग के कीटाणु बनाये ही क्यों ? वातावरण में परिवर्तन आता ही क्यों है ? रोग होता ही क्यों है ? उत्तर बहुत आसान और स्पष्ट है। परिवर्तन आते हैं वातावरण में जीव के उत्थान हेतु क्योंकि उत्थान की तरफ जीव को प्रोत्साहित करना प्रकृति में निहित संदेश है। उत्थान के लिये संघर्ष जरूरी है और परिवर्तन ही संघर्ष को जन्म देते हैं। इसलिये प्रकृति ने एक तरफ हमें रोग के कारण दिये और दूसरी तरफ प्रतिरोध क्षमता। यह विभिन्न परिवर्तनों द्वारा हमारी प्रतिरोध क्षमता को परखती है और देखती है कि हम प्रकृति प्रदत्त इस क्षमता को बनाये हुये हैं या नहीं। यदि नहीं तो हमें अपनी इस क्षमता को बनाये रखने के लिये प्रेरित करती है। अगर तब भी हम अपनी क्षमता पर ध्यान नहीं देते तो प्रकृति विकारजनक बन जाती है, क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार सिर्फ 'योग्य ही जीवन का अधिकारी है' और प्रकृति योग्यता का चयन करती है। महान दार्शनिक डार्विन ने इसे इस प्रकार समझाया है—

The Origin of Species Depend Upon Natural Selection, & Nature Selects The Fit. This Means Survival of The Fittest is The Rule of Nature.

ये बात यहां इसलिये प्रमाणी कर रहा हूं ताकि ये समझा जा सके कि प्रकृति ने आपको रोग के कारण तो दिये प्रतिरोध क्षमता भी दी और उसको बनाये रखने के लिये बुद्धि भी दी। यदि आप बुद्धिमान हैं और अपनी बुद्धि का उपयोग करना जानते हैं तो आप प्रकृति की दी हुई इस अमूल्य निधि को अधिक से अधिक समय तक बनाये रख सकते हैं। ये कैसे संभव है ? इसका वर्णन मैं आगे करूंगा।

प्रकृति में विकृति ही रोग का कारण है, इसी बात को मैं एक उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूं। यथा आप युवा हैं, सर्दियों के दिन हैं, आप चिकित्सक के पास जाते हैं और कहते हैं कि डाक्टर साहब मुझे बार-बार मूत्र आ रहा है और कोई शिकायत नहीं है कहीं मुझे शुगर की बीमारी तो नहीं हो गयी, तब डाक्टर आपको यही बताता है कि ऐसा इस मौसम में स्वाभाविक है और फिर आपकी आयु भी इस बीमारी के लायक नहीं है। इस कथन से स्पष्ट है कि एक तो मौसम (प्रकृति) के कारण ऐसा है और दूसरे आपकी प्रतिरोधक शक्ति अभी पर्याप्त है। है। आयु का रोग से गहरा संबंध है क्योंकि आयु के साथ-साथ प्रतिरोधक क्षमता बदलती है—बचपन से युवावस्था तक बढ़ती

जाती है पर नियमानुसार यद्यपि वृद्धि के पश्चात् इसके घटने का क्रम जारी होता है। यही कारण वृद्धावस्था में अधिक बीमारियों का कारण बनता है। तात्पर्य ये है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारी प्रतिरोधक-क्षमता बनी रहे, हमारी प्रकृति विकृत न हो, हम अपने आपको प्रकृति के अनुकूल बनाये रखें, वृद्धावस्था हमें समय से पहले ही न सताये और शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ रहें तो इन सबके लिये हमें प्रकृति के नियमों पर चलना होगा, अपने आपको विकृति होने से बचाना होगा। इन्हीं प्राकृतिक नियमों की खोज करके पतञ्जलि जैसे महान वैज्ञानिक ऋषि ने योग के सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

योग क्या है ?- प्रकृति का संरक्षण ही योग है। पतञ्जलिजी ने कहा है—'मनश्चित्त-वृत्ति निरोधः योगः अस्ति' और उन्होंने योग के आठ नियम बताये हैं—यम-नियम-आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान-समाधि। किसी भी काम को प्राकृतिक रूप से समयानुसार किस प्रकार किया जाये यही सब योग दर्शन हमें बताता है। अगर मनुष्य अपनी अवस्था एवं समय के अनुसार कार्य नहीं करता है तो वह शारीरिक अथवा मानसिक व्याधि से ग्रसित हो जाया करता है। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि योग के सिद्धान्तों पर चलकर, चाहे वह हठयोग हो, राजयोग हो अथवा ध्यान-योग, आप अपनी प्रकृति को चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक हो अथवा आध्यात्मिक, स्वस्थ बना सकते हैं और अपने आपको प्रकृति के परिवर्तनों के विरुद्ध लड़ने योग्य बना सकते हैं। उदाहरणतः 'हठ-योग' से (जिसके अन्तर्गत हम विभिन्न आसन और नेति-धोती आदि क्रियायें करते हैं) हमारे त्रिदोष एवं धातुयें आदि सम रहती हैं तथा शारीरिक स्वास्थ्य बना रहता है। प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है और विकार हमसे दूर भाग जाते हैं। 'ध्यान-योग' से (जिसके अन्तर्गत एकाग्रचित्त होकर हम ईश्वर का स्मरण करते हैं, अपने आपको उसमें लीन कर देते हैं) हमारा मन शक्तिशाली होता है और मानसिक व्याधियाँ हमारे ऊपर हावी नहीं होती हैं, हमें क्लेश नहीं पहुँचाती।

इस तरह मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बना रहता है तथा इन दोनों के बने रहने पर सामाजिक स्वास्थ्य स्वतः ही बन जाता है। आज के भौतिक युग का वैज्ञानिक भी इस बात को पूर्णरूपेण मानता है कि जिस बीमारी का इलाज किसी भी चिकित्सा पद्धति से सम्भव नहीं, वह योग के पालन से ठीक हो जाती है। यथा-ब्लड प्रेशर (उच्च रक्तचाप) की बीमारी जो एक आम बीमारी है, तथा जिसका दवाइयों के द्वारा कोई निदान नहीं, साधारण से आसन से जैसे शव-आसन से ठीक हो जाती है और उस

व्यक्ति को होती ही नहीं जो नियमपूर्वक योग का पालन करता है। यही कारण है कि हमारे सभी ऋषि मुनि योग की शिक्षा देते हैं और उसका स्वयं भी पालन करते हैं। मैंने अपने जीवन में कई ऐसे योगी देखे हैं जिन्हें आज तक किसी बीमारी ने छुआ तक नहीं. ऐसा क्यों? योगी भी इसी भौतिक वातावरण में रहता है, वह भी रोग के कीटाणुओं से घिरा रहता है, परन्तु रोग उसके ऊपर हावी नहीं हो पाता, क्योंकि उसके अन्दर योग की शक्ति है। योग में इतनी शक्ति है कि यदि व्यक्ति यथार्थ में योग साधना करता है तो उसे न शारीरिक व्याधि सतायेगी न मानसिक और उसका आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य भी पूर्णता की ओर होगा। तात्पर्य ये है कि योगी स्वास्थ्य का आदर्श होते हैं और स्वास्थ्य जीवन का आदर्श तथा उसको बनाये रखना प्राणीमात्र का कर्त्तव्य होता है। यही कारण है कि योगी मोक्ष को प्राप्त करते हैं अर्थात् प्रकृति के रचियता 'सुपरनेचुरल-पावर' अर्थात् ईश्वर के पास पहुँच जाते हैं तथा दूसरों को योग-साधना सिखाकर भगवान के पास जाने की राह दिखाते हैं। इन्हीं महान पुरुषों को, महान विभूतियों को हम 'सर्व-सक्षम' कहते हैं। इन महान योगियों को मैं हृदय से प्रणाम करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप भी इन योगी पुरुषों को अपना गुरु बनाकर, उनकी बतायी योग-साधना पर चलकर अपने जीवन लक्ष्य को पूरा कर पायेंगे तथा अपनी भारतीय संस्कृति के मूल में निहित इस उक्ति को चरितार्थ कर पायेंगे—

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामया।

❀ संयोग से श्रेयस्कर वियोग ❀

हम संसार के संयोग बिना रह सकते हैं, पर वियोग बिना नहीं रह सकते, जी नहीं सकते अर्थात् संसार की वस्तुओं, व्यक्तियों और पदार्थों से सम्बन्ध रखकर हमें उतना सुख नहीं मिलता, जितना सुख उनके वियोग से मिलता है। इस पर पूछा जा सकता है कि यह बात कैसे है जैसे, हमें गाढ़ नींद आती है। उस गाढ़ नींद में किसी व्यक्ति या वस्तु से किञ्चितमात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता, सम्पूर्ण वस्तुओं तथा व्यक्तियों को हम भूल जाते हैं। इनके भूलने में जितनी सुख-शान्ति है, उन वस्तुओं को याद रखने में उतनी सुख-शान्ति नहीं है।

卐 दीपावली का स्वरूप 卐

❀ श्री विष्णु प्रसाद व्यास

हमारे सन्तों-ऋषियों-मुनियों द्वारा निर्धारित सभी त्योहार साभिप्राय अर्थात् किसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर चलाये गये हैं और जीवन में उल्लास भरते हैं। इस प्रकार के रंगीन त्यौहारों में 'दीपावली' सर्व-प्रमुख है। यह सभी जानते हैं कि दीप माला का महत्व सत् की असत् पर, सात्विक भावों की तामसिक भावों पर, अलौकिकता की लौकिकता पर विजय है। श्री राम रूपी सन्त जब श्री सीता रूप सुरति को समस्त राक्षसी रूपी माया की रंगीनियों से छुड़ाकर अयोध्या रूपी निज धाम में लौटते हैं तो इस हर्ष को प्रकट करने के लिये सब ओर दीपक जलाये जाते हैं अर्थात् अन्तर्जगत अनन्त ज्योतियों से जगमगा उठता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में इस तथ्य का जिसका निर्देश ऊपर हुआ है, विशेष गौरव है। ब्रह्म-सत्-चित् आनन्द का स्वरूप है। जीव दशा में सत् और चित के भाव तो प्रकट हैं परन्तु आनन्द कहीं अदृश्य हो गया है। उसी आनंद की प्राप्ति के लिये जीव अपनी सुरति को अनेक स्थानों पर अटकाये रखता है क्योंकि उसे 'आनन्द' के स्रोत का ज्ञान नहीं है यदि उस सुख के स्रोत का बोध हो जाय तो मानव के अन्दर अहर्निश दिवाली हुआ करे।

हम हर वर्ष में एक बार दीप जला कर जब इतने प्रसन्न होते हैं तो यदि हमारे भीतर नित्य ही दीपावली जगमग किया करती हो तो उस आनन्द को सीमा में क्या बांधा जा सकता है? क्या उसका वर्णन शब्दों द्वारा किया जा सकता है? नहीं कदापि नहीं। वह आनन्द असीम है और अवर्णनीय।

अब विचारणीय विषय यह है कि हम अपने घर के अन्दर किस प्रकार के दीपकों की अखण्ड-ज्योति प्रज्वलित करके सदैव ही दीप माला कर सकते हैं? जिससे हम उस असीम और वर्णनातीत आनन्द को प्राप्त करके अपने जीवन को आनन्दमय बना सकें। सांसारिक जीवन में दीपमाला के आगमन से कई दिन पूर्व जन-जन अपने घर को स्वच्छ करने में जुट जाते हैं। घर में जितनी स्वच्छता होगी उतना ही दीपकों का प्रकाश भी अधिक देदी-प्यमान होगा। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में रुचिर दीवाली मनाने के लिये हमें अपने आन्तरिक संसार को भी स्वच्छ करना होगा। हर्ष पूर्ण जीवन की निर्भरता मन की निर्मलता पर होती है। श्री रामचरित मानस में भगवान राम के वचन हैं:—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

सन्त जनों ने मन को निर्मल करने का साधन केवल 'नाम-स्मरण' बतलाया है। नाम की महिमा अपार है। श्री रामचन्द्र जी भी इसकी महिमा का गान नहीं कर पाये। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है:—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई ।
राम न सकें नाम गुण गाई ॥
(रामचरित मानस बालकाण्ड)

नाम जप से मन अपने आप ही निर्मल हो जाता है। वाल्मीकि मुनि अपने यौवन काल में लूट मार आदि घृणित कार्य करते थे परन्तु नाम-स्मरण से वे क्या से क्या बन गये। डाकू रत्नाकर से वाल्मीकि संस्कृत के आदि कवि। उनके सम्बन्ध में गोसाईं तुलसीदासजी के शब्द इस प्रकार हैं:—

उल्टा नाम जपत जग जाना ।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

इस "उल्टानाम" शब्द से तात्पर्य 'मरा-मरा' कहने मात्र से नहीं है अपितु इसका संकेत उस नाम से है जिसकी प्राप्ति हमें केवल श्री समर्थ सद्गुरुदेव श्री की चरण शरण में जाने से ही हो सकती है, जो हमें उल्टी जिह्वा करके नाम स्मरण का रहस्य बताकर भीतरी मंजिलें पार करवा कर ऐसे निराले धाम में ले जाते हैं जहाँ असंख्य दीपकों का प्रकाश झिलमिलाता है। उस ज्योति के सामने सूर्य की भी आभा मन्द पड़ जाती है।

चहुँदिसि दीपक तेज के,
बिन बाती बिन तेल ।
चहुँ दिसि सूरज देखिये,
दादू अद्भुत खेल ॥

सद्गुरु द्वारा दिये गये नाम का प्रकाश जब घट में हो जाता है तो समस्त भ्रम संशय दूर हो जाते हैं और सब जगह ज्योति ही ज्योति नज़र आती है।

दरिया सूरज ऊगिया,
चहुँ दिसि भया उजास ।
नाम प्रकासै देह में,
हो सकल भ्रम का नास ॥

सद्गुरुदेव नाम का अद्भुत दीपक शिष्य को प्रदान करते हैं, जिससे उसका रोम-रोम दिव्य आलोक से प्रकाशमान हो जाता है।

सहजो गुरु दीपक दियो,
रोम-रोम उजियार ।
तीन लोक बाहिर भये,
मिल्यो परम अधिकार ॥

हमारे काया गढ़ में अज्ञान का घटाटोप अन्धकार है। यह सब जानते हैं कि तिमिर को दूर करने के लिये प्रकाश की एक किरण भी पर्याप्त होती है। अतएव महापुरुषों के कथनानुसार कायागढ़ के अंधेरे को नष्ट करने के लिये शुद्ध बुद्धि की अग्नि, दया की बाती के द्वारा नाम का दीपक जला दिया जाता है। दीपक में सार तत्व का तेल भरा

रहता है जिससे ज्ञान की मशाल हर समय जलती रहती है।

तिमिर का नाश करने के लिए ये ऊपर कही हुई सामग्री अर्थात् शुद्ध बुद्धि की आग, दया भावना की बत्ती, प्यार रूपि घी तेल और ज्ञान की मशाल केवल गुरु चरणों में ही प्राप्त हो सकती है।

श्रीराम चरितमानस में सद्गुरु के पूजन पर विशेष बल दिया है। राम-रावण के युद्ध के समय विभीषण के मन में एक शङ्का उत्पन्न हो जाती है कि रावण के पास तो विविध अस्त्र-शस्त्र एवं रथ देवताओं द्वारा दिये हुए विद्यमान हैं। युद्ध में विजय पाने के अनेक साधन हैं। दूसरी ओर राम के पास रथ तो क्या पाँव में डालने के लिये जूते तक नहीं हैं। इस दशा में श्रीराम अपने प्रतिद्वन्द्वी रावण को कैसे जीत सकेंगे? किन्तु जिस प्रकार धर्म नीति है कि—

गुरु सूँ कछु न दुराइये,
गुरु सूँ झूँठ न बोल।
भली, बुरी, खोटी, खरी,
गुरु आगे सब खोल॥

भक्त विभीषण ने भी अपने मन की सारी शंका को राम के आगे प्रस्तुत कर दिया। पहले तो राम अपने शरणागत के भोलेपन पर मुस्कराये और तत्पश्चात् उत्तर दिया कि हे विभीषण! मेरे ऊपर रावण के तेज प्रहार नहीं पड़ सकते क्योंकि मैंने विप्र-पूजन और गुरु-भक्ति का अभेद्य कवच धारण कर रखा है।

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा।
एहि सम आन उपाय न दूजा॥
(लंका काण्ड)

इससे प्रमाणित होता है कि नित्य दिवाली मनाने के लिये हमें समर्थ सद्गुरु की शरण ग्रहण करके नाम के दीपक से अन्तर में आलोक करना है।

गुरु शरण में जाने और उनसे नामोपदेश लेने के अतिरिक्त उनकी कृपा दृष्टि का होना भी अत्यावश्यक है। इससे अन्दर की दीपावली के असंख्य दीपक अनायास जल उठते हैं।

अपने घर में इस अखण्ड ज्योति को जलाना अति दुष्कर है। गुरु कृपा से ही साधक मन-माया की तेज चोटों से बच सकता है जो इस दीपमाला को जलाने में बाधा डालती है।

इस तरह जो साधक गुरु कृपा का अधिकारी बनकर अपनी वृत्ति को अन्तर्मुख कर लेता है वही आन्तरिक ज्योति को प्रज्वलित कर सकता है। जैसे साधारण दीपक को जलाये रखने के लिये ओट की आवश्यकता होती है उसे तेज हवा से सुरक्षित रखा जाता है ऐसे ही काम-क्रोधादि शत्रुओं के पवन रूपी झोंकों से घट दीपक को बचाने के लिये गुरु-कृपा की ओट अनिवार्य होती है।

हमें यह तो भली भाँति विदित हो गया

कि घर में दिवाली मनाने के प्रामाणिक साधन क्या-क्या हैं? अब ध्यान यह रखना है कि हम उन साधनों को अपने प्रयोग में अति शीघ्र ला सकें। एक उदाहरण देकर हम इस बात को स्पष्ट करते हैं:—

एक व्यक्ति दीपावली के दिन अनेक प्रकार के दीपक खरीद लाया। उन्हें अपने भवन पर करीने से सजा भी दिया। परन्तु उसने यह सोचकर कि अभी इन्हें जलाने की जल्दी क्या है—पहले दूसरों के घरों की दीपमाला देख लूँ फिर अपनी जला दूँगा। इस विचार से वह पड़ोसियों की दीवाली देखने में तल्लीन हो गया। इतने में अकस्मात् ही एक कुत्ता सपाटे से उधर आ निकला और वह सारे दियों का तेल चाट गया। परिणाम यह हुआ कि सब सजावट धरी की धरी रह गई और दीपक तेल से रीते हो गये।

हमारा यह भौतिक तन भी दीपक की न्याईं है। इसमें आयु का तेल भरा हुआ है। इसमें हमें प्रेम-भक्ति रूपी ज्योति को जलाना है। सन्तों ने नाम रूपी बत्ती को इसमें डाल दिया है। किन्तु हम जीव सांसारिक मोह माया के आवर्तों में फँसे हुये इस ज्योति को जलाने में उपेक्षा कर जाते हैं। सोचते हैं कि अभी तो लम्बा समय आगे पड़ा है सारी जिम्मेवारियों से निवृत्त होकर यह काम भी कर लेंगे।

सावधान! ऐसा न हो कि यो जलने से पूर्व ही काल रूपी कुत्ता आकर आयु रूपी तेल चाट ले और दीपावली को हम सच्चे रूप में न मना सकें, इसलिये हमें समय के पहले ही चेत जाना चाहिये। दीपावली के जल जाने पर हम भाग्यशाली अपने को समझते हुए सहर्ष कह उठेंगे:—

निर्मल कन्त सन्त हम पाया।
कोटि दुरणा को निर्मल करया॥

वस्तुतः त्रिकुटी के मध्य में जलने वाली दीवाली असाधारण है। उसके लिये किसी प्रकार के उपकरणों (साधनों) की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

इस प्रकार यदि हम आध्यात्मिक और दिव्य दीपमाला के मनाने में सफल हो जायेंगे तो चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश भर जायेगा। हमारे सारे बन्धन कट जायेंगे। समस्त विकार जलकर भस्म हो जायेंगे और हमारी सुरति सब भ्रमों और संशयों से निवृत्त होकर अपने अंशी में जा समायेगी।

इस तथ्य को सामने रखते हुये अपने इष्टदेव श्री सद्गुरु के पुनीत चरणारविन्दों में विनम्र निवेदन है कि वे हमें इतनी सामर्थ्य प्रदान करें जिससे हम अपने मोह रूपी अन्धकार को नष्ट करके अपनी सुरति को निज-धाम में पहुँचा कर वास्तविक दीवाली का रसास्वादन कर सकें।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

सिद्धयोग के अनुवर्ती
सिद्ध महात्मा यीशु

डा० श्री विजयसिंह

शक्ति-संचार—

सिद्धयोग की विशेषता सिद्ध सद्गुरु द्वारा शिष्य में किया जानेवाला चिन्मय, अमूर्त महाशक्ति का संचार है। यदि पात्र हुआ तो तत्काल ही सम्प्रज्ञात समाधि का अधिकारी बन जाता है। तीव्र शक्ति संचार, अधिकारी में हो, सद्गुरु किया करते हैं, जिसे पाकर व्यक्ति पर अतिशीघ्र आंतरिक रूपान्तरण शुरू हो जाता है। शिष्य यदि यम-नियमों के पालन में दृढ़ तथा सद्गुरु शरणापन्न भाव वाला हुआ तो उसमें नाना योग शक्तियाँ प्रस्फुटित हो उठती हैं। महापुरुषों के जीवन-वृत्त पढ़ने से पता चलता है कि उन्हें अपने अंतरंग शिष्यों का पूरा-पूरा ज्ञान रहा है। समय आने पर इन्हें वे सहज ही आकर्षित कर लेते हैं तथा शक्ति संचार द्वारा अल्प समय में ही उन्हें आध्यात्मिक जगत से परिचित कराकर जीव सेवा के कार्य में संलग्न कर देते हैं। सिद्धों का शक्ति-संचार कई प्रकार से हुआ करता है। इस बात को भली प्रकार समझ लेने पर यीशु द्वारा अपने अंतरंगों पर किया गया शक्तिपात और उसके अद्भुत परिणाम को ठीक-ठीक जाना जा सकेगा।

ब्रह्म पद प्राप्त सिद्ध सद्गुरुदेव अपने शिष्यों में प्रथम शक्ति प्रक्षेप शब्दों द्वारा उपदेश से किया करते हैं—जिसका सिद्धान्त इस प्रकार से है:—

आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः
परत्र स्वबोधः संक्रान्तये।
शब्देनोपदिश्यते शब्दात्तदर्थ
विषया वृत्तिः श्रोतुरागमः॥
यस्याप्रदेयार्थो वक्ता न
दृष्टानुमितार्थः स आगमः।
प्लवते मूलवक्तारि तु
दृष्टानुमितार्थे निर्विप्लव स्यात्॥

अर्थात् आप्त पुरुषों द्वारा देखा व सुना हुआ अर्थ दूसरे के मन में बोध कराने के लिए शब्दोपदेश के द्वारा दिया जाता है। वह सुनने वाले साधक के लिए प्रमाण रूप है। जिन शब्दों का उपदेश करने वाला वक्ता आप्त पुरुष नहीं है उसकी वाणी का प्रभाव मिथ्या हो सकता है, किन्तु जिन्होंने आप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है और प्रसन्न मन से अपने शिष्यों

का उपदेश कर रहे हैं, यही गुरुदेव का प्रभाव शक्तिपात है, जिसके द्वारा अधिकारी शिष्य दिक्षा पाते ही तत्काल पारदर्शी बन जाता है।

इसके अलावा संकल्प दीक्षा द्वारा सद्गुरु अपने संकल्प से प्यारे शिष्य की आध्यात्मिक उन्नति कराया करते हैं। अपने हाथों से भी शक्ति का संचरण सद्गुरु अधिकारी शिष्यों पर किया करते हैं, जिससे उनकी साधना निर्विघ्न पूरी होती है। सिद्ध लोग करुणामय नेत्रों से भी शक्ति संचरित कर पल मात्र में साधारण जीवों को परम सौभाग्यवान बना देते हैं। हम इसी परिप्रेक्ष्य में महात्मा यीशु द्वारा अपने शिष्यों पर किये गये शक्ति-संचरण की कथा कहेंगे—महात्मा यीशु की योगविभूतियों तथा उपदेश से प्रभावित होकर तमाम लोग उनके अनुयायी हो गये। एक दिन यीशु पहाड़ पर पूरी रात प्रार्थना करते रहे। जब सवेरा हुआ तो उन्होंने शिष्यों को बुलाया तथा अन्तःकरण की विशुद्धता एवं अपने प्रति एकनिष्ठा की परीक्षा के द्वारा उनमें से बारह को प्रेरित कर नाम दिया। वे पेत्रुस, अंद्रेयस, याकूब, योहन, फिलिप, बर्थोलोमी, मत्ती, थोमस, एक दूसरे याकूब, सिमोन, यहूदा तथा यूदस इस्करियोती थे। बारहवां शिष्य विश्वासघाती निकला।

इन शिष्यों को वे अपनी कृपा दृष्टि से सदैव साधन सम्पन्न बनाते रहे जिसके फलस्वरूप थोड़े ही समय में इन सबों का आत्मिक-विकास अधिकार भेद से काफी बढ़ा। ईसा इन्हें सदैव प्रोत्साहित करते रहते तथा अपना स्नेह दान देते रहते थे। वे कहते थे—तुम संसार की ज्योति हो, तुम्हारी ज्योति भी मनुष्यों के सामने इस प्रकार चमके जिससे वे तुम्हारे भले कार्यों को देखकर ईश्वर की महिमा में विश्वास करें। समत्व भाव से जीवन जीने की प्रेरणा ग्रहण करो। अपने शत्रुओं से प्रेम करो तथा अत्याचारी लोगों के लिए भी प्रार्थना करो। ऐसा करने से तुम सभी सिद्ध बनोगे जैसा स्वर्गीय पिता (ईश्वर) सिद्ध है।

तमाम भीड़ को दुःखी आर्त देखकर यीशु का मन करुणा से भर जाता था। अतः उन्होंने बारहों शिष्यों को पास बुलाकर शक्तिपात किया और कहा आज से तुम लोगों को अपवित्र आत्माओं पर काबू करने, निकालने सब प्रकार के रोग व दुर्बलतायें दूर करने की सामर्थ्य दे रहा हूँ। बीमारों को चंगा करना, मुर्दों को जिलाना, रोगों को दूर करना—तुम को मुफ्त में मिला है मुफ्त में देना। अपने पटुकों में सोना, चाँदी या पैसे मत बाँधना और रास्ते के लिए न झोली, न जूते न लाठी लेना। ईश्वर पर अटल विश्वास ही तुम्हें सब प्रकार से रक्षित रखेगा। वह परम प्रभु सदैव अपने बालकों के साथ रहा करते हैं। जो कोई तुममें से, माता-पिता को भुलाये,

अधिक प्यार करता है, वह मेरे योग्य नहीं है।

महात्मा यीशु अपने शिष्यों को अत्यन्त प्यार एवं स्नेह दिया करते थे, कथन है:—

पिता से माता सौ गुना,
करती सुत सौ प्यार।
माता से हरि सौ गुना,
हरि सौ गुरु सौ बार॥

यीशु की कृपा से उनके शिष्यों में आध्यात्मिक विकास सहज ही होता गया। एक बार जब यीशु कहीं प्रवचन कर रहे थे तो उनकी माता उनसे बात करने आईं। किसी ने कहा—गुरो! आपकी माता एवं आपके भाई आप से बातें करने के लिये आये हैं। उन्होंने संदेशवाहक से कहा—कौन है मेरी माता, कौन है मेरे भाई? अपने शिष्यों की ओर संकेत करते हुये बोले—ये हैं मेरी माता ये ही मेरे भाई, क्योंकि जो मेरे स्वर्गीय पिता (ईश्वर) की इच्छा से चलता है वही है मेरी माता, भाई और बहन।

अधिकारी भेद की बात—

अध्यात्म साधना तथा सिद्धयोग में अधिकारी भेद से ही शक्ति के संचरण का मन्द या तीव्र स्वरूप दिखाई पड़ता है। अधिकार का अर्थ है समुचित योग्यता। अन्तःकरण का निर्मल, सात्विक, यम-नियमों से परिपूर्ण जीवन वाला व्यक्ति अधिकारी कहा जाता है। इसीलिए परम गुरुओं द्वारा किया शक्तिपात अनेक शिष्यों में उनके अधिकार भेद से ही उत्थान का क्रम ग्रहण किया करता है, जो शनैः शनैः शिष्य को आगे की अध्यात्म भूमियों में आरूढ़ कराता है। ज्यों-ज्यों योग्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे अन्तःविज्ञान भी विकास को प्राप्त होता है।

महात्मा यीशु सर्वसाधारण को उपदेश दृष्टान्तों के माध्यम से दिया करते थे। एक बार समुद्र के किनारे एकत्रित भीड़ का एक दृष्टान्त उन्होंने सुनाया—सुनो, एक बोने वाला बीज बोने निकला। बोते समय कुछ बीज किनारे रास्ते में गिरे उनको पक्षियों ने चुग लिया। दूसरे कंकरीले-पथरीले जगहों में उन्हें पर्याप्त मिट्टी न मिली। ऐसे दाने गहरी मिट्टी मिलने के कारण जल्द ही पनप उठे, किन्तु सूरज उगने पर वे झुलस गये और जड़ न पकड़ने के कारण सूख गये। कुछ बीज कांटों में गिरे उन्हें कांटों ने बढ़कर दबा दिया। लेकिन जो बीज अच्छी उपजाऊ जमीन में गिरे उनमें से कुछ सौ गुना, कुछ साठ गुना फल लाये। तुममें से जो सुने वह समझे।

इस कथन से शक्तिपात द्वारा जीवों में अध्यात्म बीज-रोपण सद्गुरु कैसे किया करते हैं तथा शिष्य के तरह तरह के अन्तःकरणों में वह अमर बेलि किस दशा में पनपा करती है, सुन्दर ढङ्ग से समझाया गया है।

जब शिष्यों ने उनसे कहा—गुरो! आप

दृष्टान्तों के माध्यम से क्यों लोगों को समझाते हैं—क्योंकि दृष्टान्तों का अर्थ समझ सकना सबकी सामर्थ्य के बाहर है। यीशु ने कहा—आत्मज्ञान का रहस्य जानने का सौभाग्य तुम लोगों को है। जिसके पास कुछ है (सदाचार) उसे और दिया जायेगा (सद्गुरु कृपा) जिससे वह परिपूर्ण हो जावे। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, बहुत से नबी और धर्मात्मा तरसते थे कि जो बातें (अनुभव) तुम देख रहे हो वे देखें परन्तु उन्होंने नहीं देखा। शास्त्र का कथन है :

शक्तिपातानुसारेण
शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।
यत्र शक्तिर्न पतिता
तत्र सिद्धिर्न जायते ॥

चाहे कोई कैसा भी पुण्यवान सदात्मा क्यों न हो जब तक सिद्ध सद्गुरु की कृपा-शक्ति उस पर नहीं बरसती तब तक वह संसार सागर को पार नहीं कर पाता। सद्गुरु शक्तिपात पाकर ही शिष्य सिद्धता प्राप्त करते हैं।

इस हेतु सद्गुरु भक्ति एवं उनमें सर्व-भावों के समर्पण की आवश्यकता रहा करती है। कथन है :

"आचार्यवान पुरुषोवेद"

अर्थात् गुरु वाला ही आत्मतत्व को जानता है।

यावत्कल्पांतको देहः
स्तावददेवी गुरु स्मरेत ।
गुरुलोपो न कर्तव्यः
स्वछन्दो यदि भावयेत् ॥

कल्पभर रहने वाला शरीर भी किसी को प्राप्त हो जाय अथवा आध्यात्मिक ऊँची विभूतियाँ क्यों न प्राप्त हो जावें परन्तु उसे सर्वथा मुक्त होने के लिए हर हालत में कृपालु सद्गुरु का स्मरण करते रहना चाहिए।

महात्मा यीशु अपने प्रधान शिष्यों व उन शिष्यों के आचरण एवं निष्ठा की परख रखा करते थे। वे देखते थे कि कहीं ये हमारे प्रति अश्रद्धालु या शंकालु तो नहीं है। एक बार जब वे अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे, रास्ते में उन्होंने पूछा—लोगों के विचार में मैं कौन हूँ? वे सब उनसे कहने लगे—कुछ का विचार है आप योहन हैं, दूसरे सन्त एलियास कहते हैं और कोई पुरातन नबियों में से है ऐसा कहते हैं। तब यीशु ने पूछा—तुम्हारे विचार में मैं कौन हूँ। पेत्रुस ने कहा—आप ख्रीस्त हैं। यीशु ने मौन रहने को कहा। ख्रीस्त का अर्थ है ईश्वर-पुत्र-जीवों का उद्धारकर्ता।

पूर्वेषामपि गुरुः
कालेनानवच्छेदात् ।

***

विलक्षण मंत्रोपदेश

श्री केशव उपाध्याय

अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग-योगेश्वर, अपने दादा गुरुदेव श्री महाप्रभुजी तथा अनन्त लीलाधारी अपने आराध्य श्री सद्गुरुदेव भगवान के युगल चरणों में कोटिशः साष्टांग प्रणाम के बाद, उन्हीं कृपा-सागर की चरण-शरण में घटित एक योग परक घटना का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत प्रसङ्ग से यह स्पष्ट हो जायेगा कि सवाई ग्राम में विराजने वाले हमारे लीला-धारी महाप्रभु अपने पास पत्राचार करने वाले नवागन्तुक अदीक्षित भक्त समुदाय पर भी कैसी विलक्षण कृपा किया करते हैं। श्री प्रभु की यौगिक विभूतियों तथा चमत्कारों से प्रभावित होकर उनके साथ पत्र-व्यवहार करने वाले दुःखी जनों की संख्या भी दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। यह संख्या बढ़ती ही जायेगी क्योंकि निराधारों के स्वार्थ रहित आधार केवल मात्र हमारे प्रभुजी ही हैं। तभी तो किसी कवि ने लिखा है—

मेरे सद्गुरु के दरबार में,
दुःख दर्द मिटाये जाते हैं।
दुनिया के सताये लोग यहां,
सीने से लगाये जाते हैं॥

एक उदाहरण लीजिए बलिया जिले के एक छोटे से गांव धनऊपुर से सम्बन्धित घटना है। इस गांव की एक विधवा महिला (श्री रामकुमार की मां) ने श्री प्रभु चरणों में एक प्रार्थना पत्र दिया। पत्र में यह प्रार्थना कि गयी थी कि हमारा मझला लड़का कई सालों से कहीं लापता है, आप ऐसी कृपा करें कि वह लौटकर वापस घर आ जाय। इसके उत्तर में प्रभुजी ने जो कृपा-पत्र दिया, उसमें लिखा था कि तुम अपने गुरु मन्त्र का कम से कम दो घण्टा जप किया करो। विधवा महिला ने पुनः श्री चरणों में अपना पत्र प्रेषित करते हुए प्रार्थना की कि प्रभुजी! मैं श्री चरणों में दीक्षित नहीं हूँ। कृपया मुझे यह बतलाने की कृपा की जाय कि मैं किस मन्त्र का जाप करूँ। इसके उत्तर में प्रभुजी का जो कृपा-पत्र उसे मिला उसमें लिखा था कि तुम भगवान शङ्कर के मन्त्र का जाप किया करो। पत्र में भगवान शङ्कर का मन्त्र नहीं लिखा गया था। महिला ने प्रभुजी का पत्र पाकर महान आनन्द का अनुभव किया। प्रभु के इस कृपा पत्र के साथ वह विधवा महिला भगवान शंकर के एक पुजारी ब्राह्मण

ने पत्र पर ही भगवान शङ्कर का पंचाक्षरी मन्त्र लिख दिया। वह पंचाक्षरी मन्त्र पुजारी ने प्रभु के कृपा पत्र पर ठीक उसी जगह के नीचे लिख दिया जहाँ अनादि सिद्ध श्री महाप्रभु जी की सम्बोधन हेतु 'ओ३म् श्री रामलाल प्रभवे नमः' लिखा गया था। पंचाक्षरी मन्त्र लिखने के बाद पुजारी ब्राह्मण ने प्रभु का कृपा पत्र विधवा महिला को लौटा दिया। महिला पत्र के साथ अपने घर आ गई तथा उसने विचार किया कि कल प्रातःकाल शरीर और मन पवित्र करके मन्त्र-जाप का आरम्भ करूँगी।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब महिला स्नानादि से निवृत होकर प्रभुजी का कृपा पत्र जिस पर पुजारी ने मन्त्र अङ्कित किया था हाथ में लिया तो यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। कि पंचाक्षरी मन्त्र को स्याही की लकीर द्वारा घेरे के अन्दर बन्द कर दिया गया है। इस विधवा महिला के परिवार पर बहुत पहले से अनेक प्रेत-बाधायें थी। अतः उसने सोचा कि कहीं किसी प्रेत-बाधा के कारण तो ऐसा नहीं हुआ है। क्योंकि उसे मालूम था कि पुजारी ने केवल पंचाक्षरी मन्त्र ही लिखा था, उसने मन्त्र के चारों तरफ लकीर नहीं खींची थी।

फिर भी इस तथ्य के सत्य को प्रमाणित करने को वह शङ्कर के पुजारी ब्राह्मण के पास पुनः पहुँची ब्राह्मण ने विधवा महिला की बात का अनुमोदन करते हुये कहा कि मैंने तो केवल पंचाक्षरी मन्त्र ही तुम्हारे इस पत्र पर लिखा था। लकीर नहीं बनाई थी। पत्र को विशेष ध्यान से देखने के बाद पुजारी ने बतलाया कि यह तो मैं नहीं कह सकता हूँ कि लाइन का घेरा किसने बनाया है परन्तु ऐसा लगता है कि यह ठीक उसी स्याही से बनाया गया है जिससे पत्र देने वाले महापुरुष ने हस्ताक्षर बनाये हैं। महिला पत्र के साथ अपने घर आ गई। अपने सन्तोष के लिये उसने अपने परिवार के सभी सदस्यों से यह जानना चाहा कि इस कृपा-पत्र पर किसी दूसरे ने लाइन से घेरा तो नहीं खींचा है। परन्तु परिवार के सभी सदस्यों ने नकारात्मक ही उत्तर दिया। इसके बाद से महिला पंचाक्षरी मन्त्र का जाप करने लगी। महिला का एक बच्चा जो प्रेत बाधा के निवारण हेतु श्री चरणों में आया था उसकी पत्नी की प्रेत-बाधा भी प्रभु कृपा से दूर हो गयी थी तथा अब वह भी प्रभुजी से पारलौकिक योग-दीक्षा प्राप्त कर विधिवत् आरती-पूजन कर रहा है। जैसा कि उसके द्वारा ज्ञात हुआ कि अब उसके परिवार की प्रेत बाधा प्रायः समाप्त हो गयी है। महिला द्वारा मन्त्र जप निरन्तर जारी है परन्तु पंचाक्षरी मन्त्र को घेरे के अन्दर आने वाली बात आज भी रहस्यमय बनी हुई है।

यह भी रहस्य है कि महिला ने इच्छा रहते हुये भी न तो प्रभुजी के स्थूल शरीर का दर्शन

卐 योगासन द्वारा रोग निवारण 卐

● श्री डा० विजय शंकर उपाध्याय

योग पद्धति सर्वविदित एवं प्राचीन विद्या है जो अनादि काल से चली आ रही है। इसका वर्णन वेदों और शास्त्रों में वर्णित है, योगासन द्वारा रोग का निस्तारण भली-भांति होता है। योग के द्वारा मानसिक तथा शारीरिक क्रियायें शुद्ध होती हैं। बाह्य तथा आन्तरिक अङ्गों का सुचारू रूप से शुद्धिकरण होता है तथा वे तीव्र गति से कार्य करते हैं। किसी भी प्रकार का अवरोध उत्पन्न हो जाने पर अनेकानेक व्याधियां उत्पन्न हो जाने का भय बना रहता है।

आज का युग भौतिकवादी युग है जो अतीत और अध्यात्म को छोड़कर अज्ञानता तथा भौतिकता की ओर जल की धारा की भांति दौड़ रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप वे अनेकों प्रकार की परेशानियां भुगत रहे हैं और मानसिक तथा शारीरिक यातनाओं से प्रपीड़ित है।

यह कथन सत्य है कि "दुख की जननी सुख की चाह"। अत्यधिक आवश्यकता ही मानसिक रोग का कारण है। जैसा मालुम है कि यदि मानव का मन विकृत हो गया तो शरीर अवश्य ही विकृत होगा और यदि शारीरिक विकृति उत्पन्न हुई तो मन अवश्य ही विकृत होगा। अर्थात् मानसिक तथा शारीरिक व्याधियां एक दूसरे की पूरक हैं।

यह मालूम होता कि शारीरिक रोगों का इलाज चिकित्सा क्षेत्र में सम्भव है लेकिन मानसिक रोगों का इलाज सम्भव नहीं है। योग के द्वारा मानसिक रोगों का निवारण

(पिछले पृष्ठ का शेष)

ही किया है और न दीक्षा ही प्राप्त कर सकी है पर प्रभु कृपा की वर्षा उस अभागी पर कृपा सागर करते ही रहते हैं बरबस आश्रम पर गाये जाने वाले भजन की ये पंक्तियां याद आने लगती हैं।

मेरे प्रभु जी से तो बढ़कर,
कोई भी नहीं।

देखने की इच्छा हो तो,
देख लो सही॥

सब पर करुणा करते,
केवल शिष्यों पर ही नहीं।

मेरे प्रभु जी से तो बढ़कर,
कोई भी नहीं॥

सरलता पूर्वक किया जा सकता है। इस क्रिया के द्वारा मानसिक तथा शारीरिक व्याधियों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

पाठक बन्धु माह जुलाई की "सिद्धयोग" पत्रिका के अन्तर्गत "योगासन और उनके लाभ" शीर्षक लेख पढ़ चुके होंगे। इस लेख को पढ़कर के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि इन सब आसन पढ़कर, सीखकर लोग अभ्यास कर सकें लेकिन किन रोगों पर कौन आसन उपयोगी होगा इसका वर्णन भी उचित है। इसको जानकर रोगी तो नीरोग और निरोगी सदैव सुन्दर, स्वास्थ्य प्रसन्न चित्त एवं दीर्घायु होंगे।

जो लोग योग साधना के द्वारा मन में शान्ति एवं स्थिरता का भाव रखते हैं वे लोग सदैव सुखी तथा आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं।

गीता में ६/२७ में भगवान ने कहा है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं
योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्त रजसं
ब्रह्म भूतमकल्मषम्॥

जिस प्रकार मन भली प्रकार शान्त है जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

सुन्दर और अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए माया भ्रम जाल से मुक्त होना भी जरूरी है। यह भली-भांति ज्ञात हो कि यह मानव शरीर अद्भुत एवं अमूल्य शरीर है, इसमें सभी प्रकार के रोगों को लड़ने की क्षमता है। बाह्य तथा आन्तरिक रोगों को दूर करने का प्रबन्ध है। इस अमूल्य शरीर का सुरक्षा भी जरूरी है और धर्म साधना भी है। मन और शरीर का विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस मनुष्य की आत्मा, इन्द्रिय और मन पूर्णतः आनन्दमय स्थिर और पवित्र है वही स्वस्थ है। इसके विपरीत अवस्था में अनेक प्रकार की व्याधियों से परिपूर्ण होता है।

व्याधियों से मुक्ति पाने के लिए योग-साधना अत्यन्त आवश्यक है। 'जिस प्रकार शरीर के निर्माण के लिए शुद्ध स्वच्छ शक्तिशाली भोज्य पदार्थ की आवश्यकता होती ठीक उसी प्रकार शरीर के बाह्य तथा आन्तरिक अङ्गों के नियमित एवं सुचारु रूप से कार्य करने के लिए योग-साधना की आवश्यकता होती है।' रोगों के निवारण के लिए योगासनों का महत्वपूर्ण योगदान है। कुछेक महत्वपूर्ण आसनों का वर्णन जो प्रयोग से सिद्ध है, इस प्रकार है:—

१- गुप्तासन—

इस आसन के द्वारा ब्रह्मचर्य जीवन की रक्षा होती है। कामवासनाओं का नियंत्रण शुक्र धन की रक्षा करता है। इन्द्रियों को बल

मिलता है। स्त्रियों का प्रदर रोग, ऋतु धर्म कष्टकारी होने पर गुणकारी होता है। जरायु तथा गर्भाशय को शक्ति मिलती है।

२- वज्रआसन—

यह आसन सरल एवं विशेष उपयोगी है। गैस्ट्रीक, साइटिका, कमर दर्द, वायुवात, रीढ़ की हड्डी का दर्द, पैर का दर्द आदि को दूर करता है। इस आसन से पाचन यन्त्र को शक्ति मिलती है। कब्ज को दूर कर अच्छी तरह भूख लगती है। इस क्रिया को करने के लिए क्रमशः धीरे-धीरे समय को बढ़ाना चाहिए।

३- वीरासन—

यह आसन मन की शान्त एवं चञ्चलता को दूर करती है। पसलियाँ, छाती फेफड़ा, हृदय को शक्ति मिलती है। इसके द्वारा स्वप्न-दोष दूर हो नव शक्ति का संचार होता है।

४- धनुरासन—

इस क्रिया को करने से शरीर धनुष के आकार का हो जाता है। छाती सामने की ओर उभर कर स्वस्थ हो जाती है। भुजदण्डों, जंघाओं, पिण्डलियों पर अनुकूल तनाव रहता है। पाचन तंत्र तीव्रगति से कार्य कर, मंदाग्नि और अरुचि को दूर कर भूख बढ़ाता है। इससे पेट की चर्बी तथा जंघाओं की चर्बी धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है।

५- मत्स्यासन आसन—

इस आसन के द्वारा अत्यधिक लाभ मिलता है। इसका प्रभाव थाइराइड एवं पैराथाइराइड ग्रंथियों पर पड़ता है। इस क्रिया के करने से सर्दी, जुकाम, गलगण्ड, टांसिल, फेफड़ा तथा छाती रोगों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अंग शुद्धि एवं आंतड़ियों के विकार दूर होगा, भूख खूब लगती है। कब्जीयत मिटती है। गुल्मरोग एवं गैस्ट्रीक निर्मूल हो जाता है। कटि दर्द, रीढ़ की हड्डी का दर्द दूर होता है। इस आसन को जल्द बाजी में नहीं करना चाहिए। नहीं तो फायदा कम नुकसान अधिक होता है।

प्रायोगिक रूप से अपना अनुभव है कि योगासन करने से शरीर सदा हल्का, स्फूर्ति-दायक होता है। आसन, स्त्री, पुरुष, बालक सभी लोग कर सकते हैं। यदि बाल्यकाल से ही किया जाय तो यौवन स्थिर रहता है, बुढ़ापा कभी सताने नहीं पाता, मानसिक शारीरिक तथा आध्यात्मिक शक्ति अत्यधिक बलवती होती है जिससे सभी कार्य आसानी से करने की क्षमता प्राप्त होती है। "योगी लोगों की भावनाएँ एकाग्र एवं कुशाग्र बुद्धि होती है। योगी न तो प्रिय वस्तु प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं और न अप्रिय वस्तु से अप्रसन्न ही होते हैं।" इस क्रिया के द्वारा मन और आत्मा की शुद्धि कर परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं।

निजानुभूति—

जीवन दान

श्री गोपाल अग्रवाल, खेतड़ी नगर

प्रस्तुत लेख में परम कल्याण हेतु श्री सद्गुरुदेव भगवान की कृपा एवं चरणों के चिन्तन से अद्भुत् चमत्कार का वर्णन किया जा रहा है। श्री गुरुदेव जी की अलौकिक कृपा का वर्णन करना लेखनी से बाहर है। श्री गुरुदेव जी एक ही जगह स्थूल शरीर से विराजमान रहकर दुनिया के विभिन्न कोनों में किस प्रकार अपने बच्चों की रक्षा करते रहते हैं यह सर्व साधारण को समझाना असम्भव है।

आज से करीब २३ वर्ष पूर्व मुझे भी सर्व समर्थ के चरण कमलों में पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम पूज्य श्री गुरुदेव जी की अलौकिक कृपा का चमत्कार मैंने स्वयं सन् १९६७ में उस समय देखा जब मैंने इन्टर मिडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की थी। परीक्षा में तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण परिवार के सभी सदस्यों को काफी क्षोभ हुआ। इसी क्षोभ को प्रगट करते हुए परिवार के सभी सदस्यों ने मुझे ताड़ना भी देनी प्रारम्भ कर दी। हमारे बड़े मामा जी, जो हमेशा हमारे हित में सोचते थे एवं जिनके संरक्षण में मैं विद्याध्ययन कर रहा था, उनके दिल को भी काफी आघात पहुँचा और उन्होंने भी मुझसे बात करना बन्द कर दिया। इस प्रकार जगह-जगह की ताड़नाएं सुनकर मैं मन ही मन हीन भाव से ग्रसित रहने लगा और मन में दो-तीन दिन तक काफी गलत विचारों का आदान-प्रदान होता रहा।

एक दिन रात्रि को जब इन्हीं विचारों में खोया हुआ सोने की तैयारी कर रहा था कि एकाएक मन को प्रेरणा मिली कि आश्रम जाओ वहीं मन को शांति मिलेगी। दूसरे दिन प्रातः घर वालों की आज्ञा लेकर श्री सद्गुरुदेव के चरणों में पहुँच गया। उस समय प्रथम बार मुझे करीब पन्द्रह दिन तक गुरुदेव जी के चरण कमलों की सेवा करने का सौभाग्य मिला। जब तक मैं आश्रम में रहा। रोज यही सोचता था कि जाते समय आनन्द कन्द श्री गुरुदेव से पुष्प प्रसाद लूँगा। लेकिन आज्ञा लेते समय श्री गुरुदेव जी से प्रसाद माँगने में संकोच होने लगा। उसी समय अन्तर्यामी गुरुदेव जी मेरे मन के अन्तर्भावों को समझकर स्वयं अपने मुखारविन्द से कहने लगे कि "लल्ला को प्रसाद चाहिए" एवं तुरन्त ही गुलाब के पुष्प देकर मुझे

आज्ञा प्रदान कर दी। मैं गुरुदेव जी के चरणों में प्रणाम कर लौट आया एवं पढ़ाई की तैयारियां प्रारम्भ कर दी। उस समय श्री गुरुदेव जी के पावन-प्रसाद को ग्रहण करके मैं जो भी पाठ पढ़ता था मुझे एक बार में कंठस्थ हो जाता था। इस प्रकार गुरुदेव जी के पावन प्रसाद की कृपा से ही मैंने एम. एस. सी. तक की सभी परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

श्री गुरुदेव जी द्वारा मेरे जीवन दान की की घटना भी उसी समय की है जब १९७१ में मैं एम. एस. सी. द्वितीय वर्ष का छात्र था एवं आगरा में छात्रावास में ही रहा करता था। दिनांक २५ दिसम्बर १९७१ की रात्रि को मुझे ज्वर का आभास हुआ। सुबह होने तक ज्वर की तीव्रता काफी बढ़ गयी थी। अतः मेरे एक सहपाठी ने तुरन्त डाक्टर बुलाकर मेरा निरीक्षण कराया लेकिन ३-४ दिन के लगातार उपचार के बाद भी ज्वर की तीव्रता क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी। किसी दवा से कोई लाभ भी नहीं हो रहा था। मेरी बिगड़ती हालत को देखकर मेरे एक सहपाठी ने तुरन्त यह सूचना हमारे घर पहुंचा दी दूसरे दिन प्रातः साढ़े सात बजे मेरे मामा जी छात्रावास पहुंच गये।

उस दिन प्रातःकाल से मैं कुछ स्वास्थ्य महसूस कर रहा था एवं लेटा हुआ गुरुदेव जी के चरणों का चिंतन कर रहा था। कुछ समय तक चिन्तन करते मुझे नींद आने लगी पश्चात् मैंने देखा कि एक विशालकाय चौड़े फन का नाग मेरे पास आया एवं कहा कि मेरे साथ चलो। उसी समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे शरीर तो चारपाई पर है लेकिन मेरे शरीर के अन्दर से एक दूसरा शरीर निकलकर सर्प के पीछे-पीछे चलने लगा। काफी चलने के पश्चात् मैं सर्प के पीछे एक पगडंडी पर आ गया। पगडंडी के बायीं ओर एक काफी बड़ा बंजर खेत था जिसके बीच में एक बिल्कुल सूखा बिना पत्तियों का वृक्ष था। पगडंडी के दायीं ओर एक बड़ी एवं खाई थी। पगडंडी पर चलते-चलते जैसे ही सर्प उस वृक्ष के सामने पहुंचा उसी समय वृक्ष के नीचे से एक बहुत बड़ा काले रङ्ग का पत्थर लुढ़कता हुआ आया एवं सर्प का रास्ता रोककर कहने लगा कि इसे (मुझे) यहां मत ले जाओ। सर्प ने उसकी यह बात नहीं सुनी एवं उस पत्थर को अपने फन में लपेटकर उसी वृक्ष के नीचे फेंक कर मुझसे कहा कि जल्दी चले आओ। मैं लगातार उसी सर्प के पीछे-पीछे चलता जा रहा था। काफी दूर चलने के पश्चात् सर्प मुझे एक सफेद हिमाच्छादित पर ले गया। वहां पहुंचते ही वहां छटा देखकर मन मदमस्त हो गया एवं सोचने लगा कि यह तो कैलाश पर्वत है जहां स्वयं भगवान सदाशिव चिमटा लेकर हमेशा विराजमान रहते हैं। तब मुझे

सोचते-सोचते जैसे ही नजर ऊपर उठाई तो देखा कि स्वयं भगवान सदाशिव महामाया गौरा जी के साथ एक ऊँचे टीले पर विराजमान है। मैंने वहीं से प्रभु को नत मस्तक होकर प्रणाम किया उसी समय भगवान सदाशिव ने अपना सीधा हाथ उठाकर मुझे आशीर्वाद प्रदान किया। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भगवान सदाशिव की हथेली के बीच में ॐ लिखा हुआ है एवं वहाँ से तीव्र प्रकाश की किरणें निकल कर मेरे मस्तिष्क में प्रविष्ट हो रही है। आशीर्वाद प्रदान कर भगवान सदाशिव ने वापस जाने की आज्ञा दी उस समय ऐसा लग रहा था कि शिवरूप में श्री सद्गुरु देव भगवान ही मुझे आज्ञा दे रहे हैं एवं उनके यह शब्द कि वत्स अब जाओ, मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। सर्प के पीछे-पीछे चलकर मैं जैसे ही उस पगडंडी पर आया कि उसी वृक्ष के सामने पुनः वही पत्थर का काला टुकड़ा सर्प से आकर झगड़ने लगा। कहने लगा कि मेरे मना करने पर भी तुम इसे (मुझे) वहाँ ले गये लेकिन मैं इसको नहीं छोड़ूंगा। सर्प देवता काफी समय तक झगड़ते रहे एवं मेरे मन में यही विचार आते रहे कि देखो मेरी वजह से सर्प कितने कष्ट उठा रहा है। कुछ ही क्षणों में सर्प ने उस पत्थर के टुकड़े को उठाकर खाई की ओर फेंक दिया। खाई में पत्थर जाते ही एक भयंकर विस्फोट के साथ उस पत्थर से एक विशाल काय, दैत्याकार एवं दानव जैसी आकृति प्रगट हुई एवं चलाओ-बचाओ की आवाज के साथ उसी खाई में विलीन हो गई।

इतना अद्भुत दृश्य देखकर मेरी आँख खुल गयी। मामाजी मेरे पास ही बैठे थे। मुझे घर (शिकोहाबाद) ले जाने की तैयारी की गई शिकोहाबाद पहुँचकर पुनः डाक्टर का उपचार शुरू किया गया। वहाँ रहकर मैं करीब २१ दिन टायफायड बुखार में रहकर स्वस्थ हो गया। पुनः स्वस्थ होने के बाद मैं श्री चरणों के दर्शनार्थ आश्रम गया। उस समय श्री गुरुदेव जी अपने भवन में विराजमान थे एवं जगह-जगह से आये हुए मेरे गुरु भाई श्री गुरुदेव जी की सेवा में बैठे हुए थे। उसी समय मैंने सारा वृतान्त श्री सद्गुरुदेव जी के चरणों में निवेदन किया। प्रथम बार सारा वृतान्त सुनकर गुरुदेव जी ने काफी गम्भीर मुद्रा में मुझे दुबारा सारा वृतान्त सुनाने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् स्वयं गुरुदेव जी ने पावन कर-कमलों से पुनः प्रसाद खिलाकर मुझे आज्ञा प्रदान की एवं कहने लगे कि वत्स कल्याण धन श्री श्री प्रभुजी अपने बच्चों का हमेशा इसी तरह ध्यान रखते हैं। इस प्रकार श्री गुरुदेव जी के चरणों के चिन्तन से मुझे जीवनदान मिला। आज भी करुणार्णव परम कृपा निकेतन श्री गुरुदेव जी की कृपा से ही अपने जीवन पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहा हूं। ऐसे परम कल्याण धन सर्व समर्थ गुरुदेव जी के चरणों में मेरा कोटिशः नतमस्तक प्रणाम है।

सर्व धर्मान् परित्यज्य

श्री डा० जीवनलाल शर्मा

श्रीमद्भागवत में एक श्लोक आता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयाऽनुकूलेन नभः स्वतेरितं पुमान्
भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥

"भगवान कहते हैं कि पहले तो मनुष्य-जन्म ही बड़ा दुर्लभ है सो मिला और उस पर गुरु की कृपा और उस पर मेरी अनुकूलता। इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार-सागर के पार न जाय उसको आत्म हत्यारा कहना चाहिए।" हमें पता है कि मानव शरीर कितनी कठिनाई से मिलता है। अनेक जन्म-जन्मान्तरों में भटकते हुये जो कुछ अच्छे कार्य हम करते हैं उसके आधार पर भगवत्कृपा से यह मानव-शरीर हमें मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी मानस में इसका उल्लेख करते हुये कहा है—"बड़े भाग मानुष तन पावा"……विभिन्न योनियों में जीव कितने कष्ट भोगता है। माता के गर्भ में रहकर उसे कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं और फिर जन्म लेना और मरना ये स्वयं में इतने कष्टप्रद हैं कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। गर्भ में जब जीव जठराग्नि में जलता है, गर्भ के भीतर पदार्थों में लिपटा हुआ तड़पता रहता है उस समय की पीड़ा का अनुभव यदि जीव करे तो फिर वह परमात्मा को कभी भूल नहीं सकता। इसी प्रकार मृत्यु के समय जब प्राण निकलते हैं तब जीव को कितना कष्ट होता है, इस सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि हजार बिच्छुओं के काटने से जो पीड़ा होती है उससे अधिक पीड़ा उस समय होती है। अतः यह आवश्यक है कि मनुष्य जन्म-मरण के इस कष्ट से अपने को मुक्त करे। हमारे सन्त महात्माओं ने भी अपने उपदेशामृत द्वारा मनुष्य को सदैव आवागमन से छूटने की चेतावनी दी है और दे रहे हैं क्योंकि मनुष्य ही आवागमन से छूटने में सफल हो सकता है। मानव-योनि कर्मयोनि है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। अन्य किसी भी योनि में जीव कर्म नहीं कर सकता जबकि मानव-योनि में वह सब प्रकार से समर्थ है। इसीलिए मनुष्य योनि को कर्मयोनि एवं शेष योनियों को भोग-योनि कहा है। अतः मनुष्य को चाहिए कि जैसे भी हो अपने पर संयम करते हुये सत्कर्मों द्वारा जन्म-मरण के बंधन से अपने को सदा के लिए मुक्त कर ले।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य क्या करे ? कौन से कर्म करे जिससे वह इस बन्धन से मुक्त हो सके ? इसका उत्तर है शास्त्रोक्त कर्म करे। हमारे वेद, शास्त्र आदि धर्म ग्रन्थों ने अनेक उपाय बताये हैं जिनसे जीव का कल्याण हो सकता है। किन्तु यहां कठिनाई यह आती है कि इस वर्तमान काल में उन उपायों का क्रिया-न्वयन भी एक समस्या है क्योंकि उस प्रकार के साधन हर किसी को उपलब्ध नहीं हैं। और फिर उन कर्मों के क्रियान्वयन में यदि कहीं अनियमितता हो गयी तो लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। तो इन सब समस्याओं के समाधान के लिए हमें गीता का आश्रय लेना होगा। गीता में इन सबका हल है। कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य
मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् सब कुछ छोड़कर परम पिता पर-मात्मा की शरण में जाइये, जहां न कोई नियम है, न कोई बन्धन और न किसी प्रकार की हानि की सम्भावना। वह प्रभु शरणागत की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। अपनी शरण में आये हुये की प्रभु को कितनी चिन्ता रहती है वह भी द्रष्टव्य है—

गिरि कानन जैहैं शाखामृग,
हौं पुनि अनुज संघाती।
ह्वै है कहा विभीषण की गति,
रही सोच भरि छाती॥
—तुलसीदास

अतः सब प्रकार की चिन्ताओं को त्याग-कर परम प्रभु परमात्मा की शरण में जाना ही सर्वोचित लाभप्रद है। इसी में मनुष्य का कल्याण है। अपने को पूर्ण रूप से प्रभु के चरणों में समर्पित कर दो, फिर देखो कि आप स्वयं ब्रह्ममय हैं। आप में और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा और आप उसी ब्रह्म में विलीन हो जायेंगे जिससे आपकी उत्पत्ति हुई है, जिसके आप अंश हैं।

गङ्गा किनारे पर पहाड़ की ऊँचाई पर एक शिव मन्दिर है। मन्दिर से गङ्गाघाट तक सीढ़ियां बनी हैं। भक्त लोग गङ्गा में स्नान कर, जल लेकर सीढ़ियों पर चढ़कर मन्दिर में जल चढ़ाते हैं, माथा टेकते हैं, भगवान शिव की स्तुति एवं आराधना करते हैं और पत्र, पुष्प एवं नैवेद्य चढ़ाते हैं। प्रतिदिन यह क्रम रहता है। कालान्तर में सीढ़ी के पत्थर के मस्तिष्क में विचार उठता है— 'जिस पहाड़ का अङ्ग यह शिवलिङ्ग है उसी का मैं। किन्तु इसकी सब लोग पूजा करते हैं और मुझ पर अपने पैर और जूते रखते हैं।'' विचार ईर्ष्या का स्थान ले लेते हैं। ईर्ष्याभाव बढ़ता जाता है और जब ईर्ष्या चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो सीढ़ी के पत्थर से रहा नहीं जाता है और बरबस पूछ बैठता है— 'भाई भाई !

जिस पहाड़ पर तू जन्मा और जिसका तू अङ्ग है उसी पहाड़ पर मैं भी जन्मा और मैं भी उसी का अङ्ग हूँ। फिर तेरी ऐसी पूजा क्यों और मेरा इतना निरादर क्यों? तुझमें मुझमें क्या अन्तर है?

शिवलिंग ने अत्यन्त शान्त एवं निर्लिप्त भाव से कहा—"बन्धु! इसमें कोई शङ्का नहीं कि हम दोनों सहोदर हैं। किन्तु जिस दिन हम दोनों पहाड़ से गिरे, तुमने तो एक स्थान को पकड़ लिया और वहीं हठ पकड़ कर जम गये और मैंने स्वयं को गंगाजल में समर्पित कर दिया। जल के प्रवाह में मेरे सारे नुकीले कोने घिस गये, टूट गये, अब मैं किसी के पैरों में चुभूँगा नहीं। मेरे समस्त कोने (दोष) दूर हो गये हैं और मैं चिकना, गोल हो गया हूँ। अब मैं सब ओर से एक जैसा हूँ। मुझे कोई जैसे रखेगा, वैसे ही रखा जाऊँगा। यही है आधार मेरी पूजा का जिसका श्रेय समर्पित जीवन को है। मैंने स्वयं को गंगाजी को समर्पित कर दिया था अतः आज मेरी पूजा होती है। तुम अपने को समर्पित नहीं कर सके, अपने जीवन के कोने समाप्त नहीं कर सके, हठ पकड़ कर वहीं जम गये जो मानव दुराग्रही होता है वह समाज की दृष्टि में सम्माननीय नहीं होता। यही मुझमें और तुम्हारे में अन्तर है।"

वस्तुतः समर्पित जीवन ही सफल जीवन होता है। अतः समर्पित कर दो स्वयं को प्रभु के चरणारविन्दों में यदि कल्याण चाहते हो तो। किन्तु प्रभु का मार्ग कौन बतायेगा? प्रभु का मार्ग तो केवल योग्य गुरु ही बता सकता है। सौभाग्य से मेरे गुरुदेव इस दृष्टि से पूर्ण समर्थ हैं। जिन बन्धुओं ने पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में अपने को समर्पित कर दिया है वे बड़े सौभाग्यशाली हैं, यह उनके पूर्व जन्मों की साधना का ही प्रतिफल है। इन बन्धुओं को चाहिये कि गुरुदेव के बताये हुये मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सफल बनायें।

स्वाद हीनता—एक महान तप

जिह्वा के स्वाद को त्यागना भी एक महान तप है। स्वाद में न फँसना वीरता है। तप से मन तपता है, तभी तो बिना नमक मसाले के दाल-शाक तुमको नहीं भाता। तभी तुम 'मन भाता' भोजन चाहते हो, परन्तु यह तुम्हारी दुर्बलता है। तुम इस मनभाते में कब तक फँसे रहोगे? तुमको एक सप्ताह तक दृढ़तापूर्वक बिना नमक मसाले का शाक खाकर देखना चाहिए कि वह स्वाद का दास न बने। इसका यही उपाय है कि बिना-नमक-मसाले का भोजन करने की आदत डालनी चाहिये। इससे स्वाद हीनता आदत-जीवन का एक अङ्ग बनकर रह जायगी—जिसे स्वयं में एक महान तप की संज्ञा दी जा सकती है।

—योगी सियाराम

दीप के प्रति

श्री अशोक 'व्याकुल'

मन तुम्हारे प्रज्वलन से,
सोचता आती दिवाली।
और मेरी अब केवल,
नेह के भुजद्वार खाली।
किन्तु ले तुमको चला मैं,
छोड़ करके दीप-अवली।
क्योंकि तेरे ज्योति नयनों से,
नयन ने सब बात सुनली।
अब अमावस तक पहुँच कर,
क्यों विकल्पों में पड़े हो?
कौन से पथ छोड़ मुझको,
आस-दीपक बुझ चले हो।
तुम बिना हर राह पर हैं,
ठोकरें पलकें बिछाये।
सोचती है दीप बिन कब,
कौन जो इस ओर आये।
हम चले स्वागत करें ऐसा,
कि छाला फूट जाये।
और आने को पुनः क्या,
लौट कर ही आ न पाये।

मुद्रा और बन्ध

योगी श्री दीवान गोकुलचन्द्र कपूर

मुद्रा

उपयोग साधन के मार्ग में मुद्रायें निम्नलिखित प्रकार की हैं यथा:—

(१) महामुद्रा (२) योनिमुद्रा (३) खेचरी मुद्रा (४) विपरीतकरणी मुद्रा (५) वज्रोली मुद्रा (६) शक्तिचालिनी मुद्रा (७) विपरीतकारी मुद्रा (८) वज्रोली मुद्रा (९) शक्तिधारणी मुद्रा (१०) ताडागी मुद्रा (११) माण्डवी मुद्रा (१२) शाम्भवी मुद्रा (१३) नभो मुद्रा (१४) उन्मनी मुद्रा (१५) प्राक्मुखी मुद्रा (१६) धारणी मुद्रा और इसके चार उपविभाग जैसे (१७) पार्थिव धारणी (१८) आम्भसी धारणी (१९) वैश्वानरी धारणी (२०) वायवी धारणी।

इन २० मुद्राओं में से कुण्डलिनी योग में सहायक शक्ति चालिनी, योनि और खेचरी यही तीन हैं।

बन्ध

बन्ध मुख्यतः चार हैं यथा:—

१—मूलबन्ध २—महाबन्ध ३—जालंधर बंध ४—उड्डीयान बंध।

इनमें से कुण्डलिनी योग में सहायक ३ मूलबंध, जालंधर और उड्डीयान हैं।

(क) मुद्रा (ख) मुख्य मुद्रा (ग) वेध

उपर्युक्त मुख्य तीन मुद्रायें, ३ बंध, और वेध की संक्षिप्त विधि निम्नलिखित प्रकार की है यथा—

मुख्य मुद्रा

(१) शक्तिचालिनी मुद्रा—

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥ (हठयोग प्रदीपिका)
शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी। (शिव संहिता)

सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथों से, दोनों पैरों की एड़ियों को मूलाधार में और

दबावें, ठोड़ी हृदय में लगाकर जोर से श्वास प्रश्वास करे ताकि पेट की अँतड़ियों के दबाव व ढीला होने का प्रभाव मणिपुर चक्र पर पड़े और उसी के साथ गुदा संकोचन, खोलन करे। इससे मूलाधार की अपान वायु की टक्कर मणिपुर की प्राण वायु पर पड़ने से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होती है। इसका अभ्यास योगी के जितेन्द्रिय होकर लवण, खट्टा, तीखा वर्जित परिमित भोजन अथवा दुग्धपान करके, काम, क्रोध, मोह, अहंकार रहित, त्यागवान होकर प्रतिदिन कम से कम चार घड़ी पर्यन्त करने से सुप्त कुण्डलिनी के चलायमान होने में सहायता मिलती है। इसमें सन्देह नहीं।

(२) योनि मुद्रा—सिद्धासन लगाकर शरीर के ९ बाहरी द्वारों या छिद्रों को अंगुलियों तथा एड़ियों से यथोचित बन्द करे, दोनों अंगुठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनियों से दोनों नेत्रों को, दोनों मध्यमाओं से दोनों नासिका छिद्रों को बन्द करके गुदा और लिङ्ग को दोनों एड़ियों से अवरोधित करके, जीभ को कौवे के चोंच के समान बनाकर (पूरक प्राणायाम) वायु को अन्दर खींचकर मुँह (दोनों होठों) को कनिष्ठिका से बन्द करके कुम्भक से उसका मिलन अपान वायु से कराते हुए, षट्चक्र के प्रथम चक्र में कुण्डलिनी का ध्यान करे और 'हूं' मन्त्र का मानसिक जाप करें। इसके अभ्यास से सुप्त कुण्डलिनी का चालन होने में सहायता मिलती है। बिना शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास से योनि मुद्रा सिद्ध नहीं होती।

(३) खेचरी मुद्रा—(अथवा लम्बिका योग) जिह्वा को काफी लम्बा करके उलटकर (कपाल कुहर) मुँह के अन्दर तालु के बीच नाक की जड़ के नीचे छिद्र में प्रवेश करे, अमर वारुणि पान करे, ताकि श्वास अन्दर बाहर न आ जा सके और दोनों आँखों से भृकुटि (दोनों आँखों के बीच) को देखे। बिना जीभ को काफी लम्बा किये यह मुद्रा असम्भव है। इसके लिए घेरण्डसंहिता, गोरक्ष पद्धति, हठयोग प्रदीपिका आदि में (१) छेदन (२) चालन (३) दोहन क्रियायें बतायी हैं जो कि दुःखद और कष्टकर हैं। इस क्रिया के लिए एक सरल और सुगम मार्ग का आविष्कार परम गुरु स्व० योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय ने किया था। इस खेचरी मुद्रा के पूर्ण होने पर योगी अपने हृदय की गति को बन्द कर समाधि लाभ करता है अतएव इसे मुद्राओं में राजा कहा जाता है। खेचरी मुद्रा मन्त्र द्वारा भी सिद्ध होती है। अधिक विवरण के लिए योग्य गुरु से मार्ग दर्शन लें।

(क) मुख्यबन्ध (मूल, उड्डीयान और जालंधर)

१. **मूलबन्ध**—गुदा और लिंग के प्रदेश में एड़ियों को दृढ़ लगाकर गुदा मार्ग का संकोच करें। इससे अपान वायु ऊपर को उठकर प्राण वायु के साथ संयोग करती है। इससे सुप्त कुण्डलिनी में संचार होने से सुषुम्णा में प्रवेश होता है।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

कबीर के समकालीन

सिद्धयोगी बाबा गोरखनाथ

श्री शिवराम सांगर

भारत भूमि की यह परम्परा रही है कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है, तब-तब उसके पुनरुत्थान के लिये भगवान अपनी विशेष विभूतियों को अवतारते, सिद्ध पुरुषों और सन्त महात्माओं तथा ऋषि-मुनियों के रूप में यहां भेजा करते हैं। कबीर का उद्भव जिस काल में यहां हुआ, उस काल में भी धार्मिक मान मूल्यों का अवमूल्यन और ह्रास अपनी चरमावस्था पर था। विदेशी आक्रमणकारी अपनी इस्लामी संस्कृति का, इल्म और हुनर का साम-दाम-दण्ड और भेद से खुलकर प्रचार प्रसार कर रहे थे। ऐसे समय में यहां न केवल कबीर का अवतरण हुआ वरन् इसी काल में गुरुनानक, गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द और रविदास, तुलसी आदि सन्त भी जन्म लेकर अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से युग परिवर्तन के काम में लगे हुये थे।

देश के लाखों निवासियों ने उस समय इन महापुरुषों से मार्ग-दर्शन पाकर अपने जीवन का उद्धार किया। इस काल के सन्तों

(पिछले पृष्ठ का शेष)

२. उड्डीयान बन्ध—दोनों जंघों को मोड़कर पैरों के तलुवों को परस्पर बराबर मिलाकर बैठे। पेट के अन्दर नाभि चक्र के ऊपर-नीचे के भाग को पीठ की ओर खींचे ताकि पेट पीठ की ओर लग जाय और प्राणायाम साधे। इससे नाभि के ऊपर और नीचे के भाग पर अधिक तनाव पड़ने से प्राणवायु का मार्ग सुषुम्ना की ओर होता है।

३. जालंधर बंध—कंठ को सिकोड़कर ठोढ़ी को हृदय पर दृढ़ता पूर्वक लगावे। इससे शरीरस्थ नाड़ियां कसती हैं जिससे इड़ा और पिंगला नाड़ियों के स्तम्भित होने पर सुषुम्ना की ओर प्राणवायु का मार्ग खुलता है और ब्रह्मरन्ध्र से टपकने वाले अमृत का रक्षण होता है।

(वेध) महावेध

महावेध—कुम्भक प्राणायाम जब उड्डीयान बन्ध करते समय किया जाता है तो उसे महावेध कहते हैं।

स्मरण रहे कि जो उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण मुद्राओं, बन्धों का किया गया है वह केवल जानकारी के लिए ही है। इन्हें केवल अनुभवी सिद्धयोगी से उनके साथ ही सीखन-करना चाहिए, अन्यथा अनिष्ट होने की सम्भावना होती है।

और महापुरुषों में कबीर का योगदान सबसे अधिक उल्लेखनीय है। इनके अनुयायी और शिष्यों में न केवल हिन्दुओं की संख्या अधिक थी अपितु मुसलमानों और इतर धर्मावलम्बियों की भी गिनती कम नहीं थी। इस समय का मुल्क का शासक सिकन्दर लोदी भी इनकी योग शक्ति से प्रभावित होकर इनका शिष्य बन गया था।

यह लोक प्रसिद्धि है कि कबीर साहब स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे और सद्गुरु के रूप में स्वामी रामानन्द जी कबीर की साधना और उनके जीवन के क्रिया-कलापों से बहुत ही प्रसन्न रहा करते थे। स्वामी रामानन्द जी के कारण ही वैष्णव धर्म और संस्कृति के परिष्कार का काम कबीर ने विशेष रूप से किया था।

वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का पोषण कबीर और स्वामी रामानन्द के सहयोग से अधिक विस्तार को प्राप्त हो गया था। कबीर रामानन्द के आश्रम में प्रायः आते-जाते रहते थे। जिन दिनों कबीर और रामानन्द स्वामी काशी में निवास करते थे, उन्हीं दिनों पास के ही जङ्गल में प्रसिद्ध योगी श्री गोरखनाथ जी भी अपने नाथ-मण्डल के साथ विराजमान थे। गोरखनाथ जी अन्य धर्म या सम्प्रदाय वाले संन्यासियों की कीर्ति या प्रचार सुनकर वहाँ पहुँचकर अपनी योग शक्ति से उन नवागन्तुकों को, जो वैष्णव या अन्य सम्प्रदाय के प्रति आस्था रखकर उनमें दीक्षित हो जाते थे, उन्हें वे अपने नाथ मण्डल में लाने योग ऐश्वर्यों का प्रभाव दिखलाकर मिला लिया करते थे मानो उन्हें वे कनफटा योगी बना लेते थे।

जैसा कि कबीरदास के बारे में कहा जाता है कि वे बनारस में लहरतारा तालाब के समीप किसी कमल कुञ्ज में पड़े पाये गये थे जिनका पालन-पोषण वहाँ से उठाकर नीरू और निम्मा नामक जुलाहा दम्पति ने किया था। आयु के क्रमशः विकास के साथ ही कबीर की बुद्धि कौशल, प्रतिभा और उनके योगपरक चमत्कारों से यह प्रतीत होने लगा था कि वे पूर्व जन्म के संस्कारों से ओत-प्रोत सिद्धयोगी हैं। उनका जन्म किसी नारी के गर्भ से नहीं हुआ था किन्तु लोक-कल्याण के लिए सिद्ध पुरुषों के समान ही वे अपना यौगिक शरीर लेकर इस धरती पर आये थे।

गोरखनाथ के जन्म के सम्बन्ध में भी कुछ इसी प्रकार की लोकोक्ति है। कहा जाता कि गोरखनाथ जी के गुरु परम सिद्ध योगी श्री मछन्दर नाथ जी महाराज थे, जो कि अपने समय के अद्वितीय योगी रहे। श्री मछन्दर नाथ जी भी नित्य नियम के अनुसार भिक्षा माँगकर ही अपना निर्वाह किया करते थे और भिक्षा माँगते हुए ही गृहस्थियों के सम्पर्क में आकर उनके दुःख-दर्द की व्यथायें जानकर करुणावश उनके मङ्गल और कल्याण के वरदान दिया करते थे। जो माँगा, वह तुरन्त देकर उसे निहाल कर

दिया। ऐसी उनकी अपनी प्रवृत्ति थी। इस प्रकार वे अपने करतबों और यौगिक चमत्कारों के लिए सारे क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गये थे। एक दिन वे एक गृहस्थ के दरवाजे पर पहुँचे और भिक्षा के लिए अलख जगाया। घर में केवल एक स्त्री थी, वह मछन्दर नाथ की आवाज सुनकर भिक्षा लेकर बाहर आई। देखने में वह बहुत ही उदास और दुःखी सी प्रतीत हो रही थी। मछन्दर नाथ ने भिक्षा तो उससे ग्रहण कर ली, लेकिन साथ ही उससे यह भी पूछ बैठे कि माँ! तू उदास और दुःखी क्यों है? स्त्री ने जवाब दिया, महाराज! मेरे घर में सब कुछ है किन्तु कोई सन्तान नहीं है, इस कारण मेरा मन इससे और उदास बना रहता है। यदि आपका वरदान प्राप्त हो जाय तो मैं भी पुत्रवती होकर आपके गुण गाती रहूँगी। सिद्धयोगी मछन्दर नाथ ने उस पर अनुग्रह करके अपनी झोली में से कुछ भभूत निकाली और उससे कहने लगे कि माई! यह शङ्कर जी की भभूति है इसे नहा-धोकर खा लेना। तेरे अवश्य ही बड़ा अद्भुत और योगी पुत्र होगा।

मछन्दर नाथ भभूति देकर आगे बढ़ गये। स्त्री ने शाम को पति के काम से लौटने पर भभूति पाने की सारी घटना अपने पति को ज्यों की त्यों बता दी। पति को कोई श्रद्धा ऐसी बातों पर न थी, उसने कहा कि योगी लोग इस रूप में कोई नशीली चीज भी खिला देते हैं, अतः तुम इसे न खाकर बाहर कूड़े के ढेर पर फेंक दो। स्त्री ने ऐसा ही किया। समय बीतता चला गया। बारह वर्ष बाद देशाटन करते हुए फिर उसी दरवाजे पर आये और भिक्षा माँगने लगे। वही स्त्री फिर भिक्षा लेकर आई तथा पुनः नाथ जी से संतान की प्रार्थना करने लगी। मछन्दर को पहली बात याद आई और उन्होंने पूछा कि माँ पहले भी मैं तुझे भभूति दे गया था, उसका तूने क्या किया स्त्री ने कहा कि वह तो मैंने अपने पति की आज्ञा से कूड़े के ढेर पर फेंक दी थी। मछन्दर नाथ ने कहा—माँ! तूने बड़ा गलत किया। भगवान शङ्कर की भभूति कूड़े के ढेर पर डालने के लिए नहीं दी थी। खैर अब तू देख कि तेरे द्वारा कूड़े के ढेर पर डाली गयी उस भभूति से ही बालक पैदा हुआ है और उसकी देख-रेख हम करते रहे हैं। अभी उस बालक को तेरे सामने उपस्थित किये देते हैं। इतना कहकर मछन्दरनाथ जी ने आवाज लगाई "बेटा गोरख! आओ तुम्हारी अब जरूरत है आओ। आवाज के समाप्त होने के साथ ही एक सुन्दर स्वस्थ रूपवान बालक आकर उपस्थित हो गया। स्त्री यह देखकर मछन्दर नाथ के पैरों पर गिर पड़ी और बालक को अपने घर ले जाने की हठ करने लगी। मछन्दर नाथ ने कहा कि तुम लोगों में श्रद्धा और विश्वास का अभाव रहा इसलिए तुमने इसे कूड़े पर फेंक दिया। भभूति ने अपना काम किया वह बालक तो बना लेकिन यह

महामाया

श्री टी० के० उपाध्याय

योगसाधना की उच्च अवस्था में जब साधक पहुँच जाता है तब उसे कैवल्य अवस्था कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त योगी के अन्दर असम्भव क्षमता प्राप्त हो जाती है। उसकी इच्छामात्र से सृष्टि या प्रलय कुछ भी हो सकती है। केवल उसके मन में सङ्कल्प मात्र आने भर की देर रहती है। ऐसी अवस्था पहुँचे हुए योगियों का संसार में रहकर धर्म प्रचार करना या कुछ भी कर्म करना लाभदायक या हानिकारक कुछ भी हो सकता है। वह भस्मासुर की तरह किसी भी दुष्ट को भयंकर वरदान दे सकता है या कपिलमुनि की तरह राजा सगर के ६० हजार पुत्रों को भस्मकर सकता है। फिर ईश्वर जो कि एक महायोगी है उसकी सत्ता में बाधा पहुँच सकती है; पर योगियों में तथा महायोगी में एक तरह का समझौता हो जाता है कि छोटी शक्तियाँ बड़ी शक्ति के कार्य में बाधा नहीं डालतीं। अगर वे बाधा डालें तो वे नष्ट तो होंगी ही साथ ही साथ और भी बहुत से अनर्थ भी हो जाया करते हैं। जैसे दो राष्ट्रों में युद्ध छिड़ जाय तो शक्तिशाली राष्ट्र की विजय तो होगी, लेकिन दूसरे को भी तो कुछ नुकसान का सामना करना ही पड़ता है (जैसे विश्वामित्र ने नयी सृष्टि का निर्माण शुरू कर दिया था) इसलिए उन बड़े राष्ट्रों की जिम्मेदारी होती है कि उन्हें किसी तरह युद्ध में लिप्त न होना पड़े।

इस ब्रह्माण्ड की रचना के सम्बन्ध में ऐसा शास्त्रों में आया है कि ईश्वर की इच्छा हुई कि "मैं बहुत रूपों में विचरण करूँ" तब उससे आदिशक्ति महामाया का जन्म हुआ और उसने पहले आकाश को बनाया। इस आकाश में हुए कम्पन के फलस्वरूप वायु की उत्पत्ति हुई। वायु के चलने से घर्षण के फलस्वरूप अग्नि की उत्पत्ति, अग्नि के बाद जल तथा जल के बाद पृथ्वी और उसके बाद जीव जगत की रचना हुई। तब इसमें प्रभु को

(पिछले पृष्ठ का शेष)

बालक अब आपको नहीं दिया जा सकता है। इतना कहकर मछन्दर बालक को लेकर जङ्गल की ओर चले गये और बरसों तक उसे अपने साथ ही रखा। गोरखनाथ जी ने भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में योग का प्रचार किया। इनका योग प्रचार भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं रहा। बल्कि वे नेपाल देश में भी जाकर योग का प्रचार करते रहे। कहते हैं कि गोरखनाथ के नाम पर ही नेपाली लोग अब तक गोरखा कहकर पुकारे जाते हैं।

प्रसंगवश कबीर के समकालीन बाबा गोरखनाथ के जीवन के बारे में यह लोक श्रुति हम यहाँ दे रहे हैं। इससे आगे का विवरण 'सिद्धयोग' के किसी आगामी अङ्क में प्रकाशित किया जायगा।

इच्छा-शक्ति के फलस्वरूप चैतन्यता आयी और सृष्टि का क्रम चल पड़ा।

महामाया का काम है कि जीव को इस सृष्टि प्रवाह में उलझाये रखे, इसके लिये वह नाना कौशल का प्रयोग करती है। जबतक यह देवी प्रसन्न नहीं होती है तब तक मनुष्य मोक्ष के मार्ग में प्रवेश नहीं करपाता है। इसीलिये चण्डी में आया है कि—

त्वं ईश्वरी शक्तिर्नन्तवीर्या:
विश्वस्य बीज परमासी माया।
संमोहितं देवी समस्तमेतद्
त्वैवा प्रसन्नाभुवि मुक्ति हेतुः॥

अर्थात् छोटा बच्चा घर में रोता है माँ घर के कामों में लगी रहती है वह उसे चुप कराने के लिये बहुत तरह की चेष्टा करती है, कभी कुछ खिलौने पकड़ा दिये, कभी खाने का कोई सामान दे दिया। अगर बच्चा इन सबमें भूल गया तो माँ अपना करने लगती है लेकिन कुछ बच्चे ऐसे होते हैं, जो माँ के भुलाने में न आकर रोते ही रहते हैं, तब माँ उसे गोद में उठा लेती है और प्यार करती है। बच्चा भी आनंद से किलक उठता है।

जब हम ईश्वर के शरणापन्न होते हैं तो ऐसी ही घटनायें घटती हैं। वैसे तो भगवान श्रीकृष्ण ने भक्तों की चार-श्रेणियाँ (आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी) बताई है। जिनमें आर्त के कष्ट दूर होते ही वह पुनः महामाया के सृष्टि प्रवाह में बहने लगता है। अर्थार्थी की भी यही दशा होती है। जिज्ञासु की स्थिति उस रोते हुये बालक की जैसी होती है जिसे महामाया बहुत तरह के खिलौनों (सिद्धियां) देकर ठगना चाहती है अगर मान गया तो ठीक ही है नहीं तो फिर तो गोद में उठाना ही है।

अब बात आती है कैवल्य अवस्था वाले योगियों की। संसार में जिस किसी ने इस अवस्था को प्राप्त कर लिया उसे उस महा-योगी ईश्वर की प्रेरणा से महामाया नारी रूप में इसकी सेवा के लिये उपस्थित हो जाती है तथा यहां तक (शिव तक) लोग नहीं पहुँचे इस पर कड़ी दृष्टि रखती है। किसी को कुछ दिखाकर उनसे दूर कर देती है तो किसी को तिरस्कार करके उनसे दूर कर देती है और किसीकिसी को आघात भी देती है। इन सारे कार्यों में बहुत ही चतुरता तथा निपुणता की आवश्यकता है।

वह नजदीक आने वाले व्यक्ति के मन में अपने कार्यों द्वारा हिंसा, घृणा, मोह, स्वार्थ-परता तथा लोभ के भावों को बढ़ावा देती है जिससे लोग रास्ते से हट जांय क्योंकि मोक्ष-कामियों को बढ़ावा देना उसके अपने सृष्टि प्रवाह में बाधा डालना है जो कि ईश्वर के संकल्प के विरुद्ध है कि "मैं बहुत रूप में विच-रण करूं।"

संसार में जब ऋषि अरविन्द की यह स्थिति आयी तो फ्रांस से एक स्त्री महामाया

की भूमिका में आ गयी। राम-कृष्ण परमहंस के साथ उनकी पत्नी ने यह कर्त्तव्य-पालन किया। स्वामी विवेकानन्द के पीछे अमेरिका से "सिस्टर निवेदिता" निगमानन्द परमहंस के साथ मा भैरवी एवं श्री योगानन्द (मुकुन्द-घोष) के पीछे "दयामाता" स्वामी अच्युतानन्द के पीछे एक स्त्री जिसे वहाँ पर लोग माँ शब्द से ही संबोधन करते हैं अभी भी है (स्वामी अच्युतानन्द का असली नाम एम. एम. हाजरा था वे १९४० साल में एम. ए. एल. एल. बी. पास करके आसनसोल नगर में वकालत करते थे। बाद में उन्होंने संन्यास ले लिया और बहुत ऊँची स्थिति में जा पहुँचे। उनके (महामाया) के हाव-भाव तथा ताड़ना को सहकर जो कुछ दिन उनके चरणों में टिक पाया वह निहाल हो गया।

इस प्रकार करीब-करीब ९५ महापुरुषों की तालिका मेरे पास थी। सुधी पाठकगण इस विषय में स्वयं गहराई से छानबीन करने से सत्यता की परख कर सकते हैं।

इस प्रकार इस महामाया के कारण उस योगी की भी रक्षा होती है और सृष्टि की भी, यह अनधिकारी के हाथों में तलवार न पकड़ा दे इससे भी समाज का बचाव होता है।

जो व्यक्ति अपने अन्दर के शत्रुओं अर्थात् काम, क्रोध, राग, द्वेष, ईर्ष्या तथा लोभ को मार डालता है उसके ऊपर महामाया का प्रभाव नहीं पड़ता। और वह मोक्ष के मार्ग में आगे बढ़ सकता है फिर वही महामाया, आदि शक्ति प्यार के साथ गोद में लेकर उसे साधना की अन्तिम मंजिल तक पहुँचा देती है।

न भयं न लज्जा !

अर्थातुराणां न गुरुर्नबन्धुः,
कामातुराणां न भयं न लज्जा।
विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा,
क्षुधातुराणां न रुचिर्न बेला॥

—धनलोलुप मनुष्य का न कोई गुरु होता है, न बन्धु, कामातुर मनुष्यों को न भय होता है, न लज्जा संकोच; विद्याप्रेमियों को न सुख भोगने का अवसर मिलता है, न सोने का और क्षुधा-पीड़ित-मनुष्यों की न कोई स्वतन्त्र रुचि होती है, न भोजन की कोई निश्चित बेला।

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठे अग्निं पयसि घृतम् ।
इक्षौ गुडं यथा देही ऽऽत्मास्ति शरीरिणाम् ॥

जिस प्रकार फूलों में गंध तिलों में तेल, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी और गन्ने में गुड़ निहित रहता है उसी प्रकार शरीरों में आत्मा रहता है।

× × × × ×

अविश्वासे निधानाय महापातक हेतवे ।
पितु-पुत्र विरोधाय हिरण्याय नमोऽस्तु ते ॥

हे धन ! तुझे नमस्कार है। तू अविश्वास का मूलकारण, महापापों का हेतु और पिता-पुत्र में भी कलह कराने वाला है।

× × × × ×

वयसः कर्मणो, अर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेश वाग्बुद्धि सारूप्य माचरन्वि चरेदिह ॥

आयु, क्रिया, धन, विद्या और कुल के अनुरूप वेश वचन और बुद्धि रखता हुआ संसार में रहे।

× × × × ×

यदन्येषां हितं न स्यात आत्मनः कर्म पौरुषम् ।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथंचन ॥

हमारे जिस कर्म से लोगों का हित नहीं हो सकता, अथवा जिसके करने में स्वयं अपने ही को लज्जा मालूम होती हो वह कभी नहीं करना चाहिए।

× × × × ×

पर उपदेश वेलायां शिष्ट सर्वे भवन्ति वै ।
विस्मरन्तिह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते ॥

दूसरों को उपदेश देते समय सभी शिष्ट बन जाते हैं। अपने कार्य के उपस्थित होने पर शिष्टता भूल जाते हैं।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥

अकेले स्वादिष्ट भोजन न करें, अकेले किसी गूढ़ विषय में विचार न करें। अकेला रास्ता न चले और बहुत से लोग सोये हों तो उनमें अकेला जागता न रहे।

× × × × ×

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जाः तिष्ठन्ति पादपाः । —चाणक्य

बहुत सरल और सीधा नहीं होना चाहिए, वन में जाकर देखो सीधे वृक्ष ही काटे जाते हैं। और टेढ़े वृक्ष सुरक्षित रहते हैं।

× × × × ×

अनायके न वस्तव्यं न वसेद् बहुनायके ।
स्त्री नायके न वस्तव्यं न वसेद्बाल नायके ॥

जहाँ कोई मालिक न हो या बहुत से मालिक हों अथवा जहाँ स्त्री या बालक मालिक हों वहाँ नहीं रहना चाहिए।

× × × × ×

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥

दान करने से गौरव प्राप्त होता है, धन का संचय करने से नहीं। जल दान करने वाले मेघ की स्थिति सबके ऊपर है और जल का संचय करने वाले समुद्र की नीचे।

× × × × ×

यद्यपि चन्दन-विटपी फल-पुष्प-विवर्जितः कृतो विधिना ।
निज-वपुषैव तथापि हि संहरति सन्तापं परेषाम् ॥

विधाता ने चन्दन के वृक्ष को फल-पुष्प से रहित बनाया है, फिर भी वह अपने शरीर से ही दूसरों का संताप मिटाता है।

× × × × ×

सहस्रशक्तिश्च शतं शतशक्तिर्दशापि च ।
दद्यादापश्च यः शक्त्या सर्वे तुल्यफलाः स्मृताः ॥
—महाभारत

हजारवाले ने सौ, सौवाले ने दस और किसी ने यथाशक्ति थोड़ा सा जल ही दिया तो भी सबके दान का फल बराबर है।

कछवा बाजार में—

पूज्य श्री गुरुदेवजी का—
जन्मदिवस समारोह

पूज्यपाद अनन्त श्री-विभूषित प्रातः स्मरणीय क्षण-क्षण वन्दनीय श्री सद्गुरुदेव भगवान का जन्म दिवस समारोह जिसे दूसरे शब्दों में वर्धन्ती समारोह की संज्ञा भी दी जा सकती है, गत विजयदशमी पर्व पर हमारे गुरुभाई-बहनों की उपस्थिति में जिला-मिर्जापुर अन्तर्गत कछवा बाजार में अतीव हर्ष एवं उल्लास पूर्ण वातावरण में मनाया गया। समारोह का शुभारम्भ प्रभुवर श्री रामलाल जी महाराज और श्री गुरुदेव जी के जयघोषों के साथ हुआ। शहनाई तथा अन्य वाद्य वादनों की मोहक ध्वनि ने वातावरण को और भी अधिक रङ्गा-रङ्ग बना दिया था। वेदमन्त्रों के सस्वर उच्चारण और यज्ञ की ज्वलनशील समिधाओं से उद्भूत धूम से समारोह का समूचा स्थल गन्धायमान बना हुआ था। यज्ञ के समापन के तुरन्त बाद ही इस समारोह के मुख्य आयोजक श्री स्वामी प्रसादजी एडवोकेट और उनके परिवारी जनों द्वारा पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी को मधुमिश्रित दुग्ध-धाराओं और दिव्य गंगा जलधाराओं से स्नान कराया गया। इसके उपरान्त कछवा मण्डल के तथा बाहर से यहाँ पधारे हुए अन्य सभी गुरुभाई-बहनों ने भी दुग्ध-स्नान कराने का सुयोग प्राप्त किया। स्नान कराने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि स्नान का कार्य-क्रम एक लम्बे समय तक चलता रहा। शिष्यों और साधकों में अपने गुरुदेव के प्रति कितनी श्रद्धा, कितनी भक्ति और कितना अधिक विश्वास तथा कितना आदर अनुराग है, यह इस समारोह के उल्लासमय वातावरण से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। कछवा-बाजार का जन्म दिवस-समारोह सभी दृष्टियों से सराहनीय और अनुकरणीय रहा। श्री स्वामीप्रसाद जी एडवोकेट तथा उनके भाई अर्जुनसिंह जी, परिवारीजनों ने तथा अन्य क्षेत्रीय सभी भाई-बहनों ने समारोह में सम्मिलित होने को बाहर से पहुँचे हुए अतिथियों के सम्मान, आवास, भोजन, व्यवस्था और अन्य सुख सुविधाओं की सुचारु व्यवस्था का पूरा-पूरा ध्यान रखा था।

आतिथेय श्री स्वामीप्रसाद जी और उनके साथी सहयोगी गुरुभाई-बहनों ने कछवा बाजार में न केवल जन्म दिवस समा-

रोहू के कार्यक्रम अपने यहाँ रखने के लिए श्री गुरुदेव जी से स्वीकृति प्राप्त कर ली थी, किन्तु योग प्रचार कार्यक्रम के लिए भी कुछ दिन देने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी। अतः इन दोनों ही कार्यक्रमों की सफलता के लिए पूज्य श्री गुरुदेव जी आश्रम के अन्य अनेक ब्रह्मचारियों के साथ जिनमें तपोमूर्ति बहन उमा शर्मा और युवा संन्यासी स्वामी विद्यानन्द के नाम भी उल्लेखनीय हैं-काछवा आ पहुँचे थे। गुरुदेव जी के पहुँचने पर स्वागतार्थ जो अपार जन-समूह स्वागत स्थल पर एकत्र हुआ था और जयकारों के तुमुल घोषों तथा गाजे-बाजे के साथ जिस गर्मजोशी के साथ उनके आगमन पर हर्ष और उल्लास के वातावरण का सृजन हुआ वह अपने में बड़ा ही प्रेरक और उद्बोधक रहा। साथ ही आगामी कार्यक्रम की सफलता का द्योतक भी यह था।

एक सुसज्जित प्रवचन मण्डप में गुरुदेवजी के बैठने का भव्य आसन बनाया गया था जिसे और भी आकर्षक ढंग से सजाया गया था। इस सब सुन्दर सजावट और यथोचित व्यवस्था के लिए श्री गुरुदेवजी ने अपने आयोजक सत्सङ्गी बन्धुओं के पुरुषार्थ की सराहना और प्रशंसा की।

१९ अक्टूबर से २३ अक्टूबर तक प्रवचनों का तथा सङ्कीर्तन और सङ्गीत का मधुर समयबद्ध कार्यक्रम सुचारु रीति से वहाँ चलता रहा।

अपने प्रवचनों में पूज्य श्री गुरुदेव जी ने जिन मूलभूत योग सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला उनका विवरण 'सिद्धयोग' के विशेष प्रतिनिधि ब्रह्मचारी श्री दासलालजी के द्वारा निम्नलिखित शब्दों में प्रेषित किया गया है—

२० अक्टूबर को महाराजश्री ने गीता पाठ की अनुभूति करायी, पश्चात् अपने संक्षिप्त सारगर्भित प्रवचन में योग द्वारा काय निर्माण साधन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि योगी के लिए इस योग्यता को प्राप्त कर लेना कोई दुर्लभ और असम्भव बात नहीं रहती। शर्त केवल इतनी रहती है कि साधक की योग भूमिकायें दृढ़ से दृढ़तर होती चली जाय उसको इन साधनाओं में कभी कोई अन्तराय नहीं आना चाहिए। इस सम्बन्ध में गुरुदेवजी ने गुरुभाई श्यामबिहारी शुक्ल का उदाहरण देते हुए बताया कि वह काय-निर्माण विधि से दूसरा शरीर धारण कर चुका है। केवल निरन्तर योग साधना की शक्ति ही इसका आधार रही है।

आज के सायंकालीन सत्सङ्ग में सङ्गीत-रत्न बहन उमाशर्मा ने आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का पावन चरित्र अपनी ओजस्वी-सङ्गीतमयी-वाणी द्वारा उपस्थित किया जिसे श्रोता-समुदाय ने तन्मयता से शान्त-मना होकर सुना। इस प्रसंग में प्रभुजी के कतिपय योग-ऐश्वर्यों का रोचक वर्णन श्रोताओं को सुनने को मिला।

प्रभुजी के जीवन प्रसंग की व्याख्या श्री गुरुदेव जी अपने प्रवचन में करते हुए चित्त की पांच भूमिकाओं का उल्लेख किया। आपने बताया कि मूढ़ अवस्था वाले प्राणी पशु-पक्षी आदि होते हैं जो तमोगुण प्रधान होते हैं दूसरे क्षिप्तावस्था के होते हैं इस श्रेणीमें असुर दानव आदि आते हैं। तीसरी अवस्था के प्राणी मनुष्य श्रेणी में आते हैं जो रजोगुण और तमोगुण से युक्त होते हैं। चौथी अवस्था की श्रेणी में एकाग्रवस्था के प्रारम्भिक योगी आते हैं, यह सतोगुण प्रधान होते हैं। पांचवीं अवस्था की श्रेणी में वे सिद्धावस्था वाले योगी आते हैं, जिन्हें समाधि अवस्था सहज सुलभ रहती है। इस पांचवीं अवस्था की सुलभता के लिए श्री गुरुदेव जी ने उपस्थित योग-साधना-प्रिय बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि नित्य प्रतिप्रातः वेला में ५ से ७ बजे तक तुम निरन्तर बिना किसी अन्तराय के ध्यान में बैठने का अभ्यास किया करो। यह निरन्तर का ध्यानाभ्यास तुम्हें साधना के लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा देगा। मुझे भी कभी महाप्रभु जी ने ऐसा करने का आदेश प्रारंभमें दिया था, वही आदेश मैं तुम्हें दे रहा हूँ।

२१ अक्तूबर के प्रवचन में पूज्य गुरुदेव जी ने भगवान कृष्ण के इस संदेश की व्याख्या कि की मनुष्य अन्तकाल में जिस भाव को लेकर अपना शरीर छोड़ता है उसी भाव के अनुसार उसे अगला जन्म और अगली योनि प्राप्त होती है। इसलिए मनुष्य को सदा श्रेष्ठ और श्रेयस्कर भावनाओं में ही मन को लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। चित्त को इसीलिये ईश्वर परायण रखने का सतत् प्रयत्न योगी-जन किया करते हैं। योग परायण जीवन ही शुभ और श्रेयस्कर जन्म का कारण बन जाया करता है इसीलिए मैं तुम्हें योगी बनने का, योग पथ पर चलकर वर्तमान और भावी जन्म को सफल कर लेने का सत्परामर्श दे रहा हूँ।

प्रसङ्गवश पूज्य गुरुदेवजी ने अपने प्रवचनों में सवाई गांव से सम्बन्धित उन कई चमत्कारिक घटनाओं और तथ्यों का वर्णन किया जिन्हें जनश्रुति के आधार पर वहां के निवासी निजानुभूतियों के रूपमें कहकर सुनाते रहे हैं।

अन्तिम दिन कार्यक्रम का समापन विदाई-वेला के रूप में हुआ। अपने सभी बच्चों को शुभाशीर्वाद देते हुये गुरुदेवजी ने आश्रम के ब्रह्मचारियों के साथ अगले कार्यक्रमों के लिए प्रस्थान किया। ❖❖

उद्यम कबहुँ न छाँड़िये पर आसा के मोद।
गागर कैसे फोरिये अ.वत देख पयोद।।
जाको जैसा उचित है करिये सोइ विचारि।
गीदड़ कैसे ल्याइहै गजमुक्ता गज मारि।।

—वृन्द कवि

साहित्य-परिचय—

इस अङ्क से हम 'साहित्य-परिचय शीर्षक' से एक नवीन स्तम्भ का शुभारम्भ कर रहे हैं। अनेक सुलेखक और प्रकाशक 'सिद्धयोग' कार्यालय में अपनी प्रकाशित कृतियाँ भेजकर उनका परिचय अथवा समीक्षा देने का आग्रह किया करते हैं। इसी आग्रह की पूर्ति का प्रयास इस शीर्षक अन्तर्गत किया जाता रहेगा। किन्तु प्रकाशक अथवा लेखकों को परिचयात्मक समीक्षा के लिए कार्यालय के पते पर अपने प्रकाशन अथवा कृति की दो दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक रहेगा।

—सं० सम्पादक

स्वास्थ्य-सागर—लेखक तथा प्रकाशक श्री पं० शिवकुमार जी वैद्य शास्त्री, भूतपूर्व सदस्य उत्तर प्रदेश चिकित्सा परिषद्, लखनऊ। आकार १८×२२/८ पृष्ठ संख्या लगभग १५० सजिल्द दुरंगी छपाई मूल्य ११ रुपया मात्र। प्राप्ति स्थान शिव-चिकित्सालय, रावतपाड़ा आगरा।

वैद्य श्री शिवकुमार जी शास्त्री आगरा के अत्यन्त प्रख्यात और आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के निष्णात् वैद्यों में से हैं। आपने आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली की उपयोगिता पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से कुछ ऐसी भी हैं जिनकी दो-दो आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी लेखक की एक ऐसी ही कृति है जो अपनी उपयोगिता के कारण प्रकाशित होने के कुछ महीनों में ही अपने दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा-सूची में आ पहुँची है।

स्वास्थ्य-सागर में स्वस्थ्य रहने के उन सभी नियमों और उपायों का विस्तार से वर्णन किया गया है जिनका पालन करने से मनुष्य रोगों से बचा रहकर केवल और स्वस्थ्य जीवन ही नहीं किन्तु दीर्घ जीवन का लाभ भी उठा सकता है। प्रायः उन सभी रोगों का परिचय और उनके आक्रमण पर औषधि द्वारा उनके उन्मूलन की विधि का वर्णन भी पुस्तक में भली प्रकार से किया गया है। लेखक ने अनेक रोगों के दूर करने के लिए अपने दुर्लभ अनुभूत प्रयोगों का भी उल्लेख करके उसे और भी अधिक उपादेय बना दिया है। निश्चय ही पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

टाइटिल पेज ३ से आगे—

२२-१-८६ से २८-१-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम लखनऊ पता—द्वारा ओमप्रकाश ब्रह्मचारी सिद्धयोग शिक्षण केन्द्र F २४ आवास विकास कालोनी - राजाजी पुरम, तालकटोरा लखनऊ
२९-१-८६	को	बनारस के लिए प्रस्थान
२९-१-८६ से ३-२-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम बनारस पता—द्वारा आत्माप्रसाद मिश्र एडवोकेट नवेंसर वाराणसी
३-२-८६	को	इलाहाबाद के लिए प्रस्थान
४-२-८६ से १४-२-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम इलाहाबाद पता—द्वारा डा० बी० पी० चौहरी अलोपी बाग, इलाहाबाद

श्री गुरुदेवजी के भावी योग प्रचार कार्यक्रम

६-१२-८५ से १०-१२-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम मेरठ पता— द्वारा श्री सुरेन्द्रपालसिंह एडवोकेट म० न० १६५, साकेत कालोनी (दैनिक जागरण कार्यालय के पास मेरठ)
११-१२-८५	को	लाडवा के लिए प्रस्थान
१२-१२-८५ से १५-१२-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम लाडवा पता—द्वारा ला० साधुराम अठवरिया मु० पो० लाडवा जिला कुरुक्षेत्र
१७-१२-८५	को	खेतड़ी नगर के लिए प्रस्थान
१८-१२-८५ से २३-१२-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम खेतड़ी नगर पता—द्वारा एम० पी० सिंह Q. no. E. 53—II. B. खेतड़ी नगर झुंझुनू
२४-१२-८५ से २५-१२-८५ तक		आश्रम निवास
२६-१२-८५	को	कलकत्ता के लिए प्रस्थान
२७-१२-८५ से ५-१-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम कलकत्ता पता—द्वारा हरियाणा भवन विवेकानन्द रोड कलकत्ता-7
६-१-८६	को	दुर्गापुर के लिए प्रस्थान
७-१-८६ से ९-१-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम दुर्गापुर पता—द्वारा डा० जगन्नाथ साहू ४/२ विवेकानन्द रोड दुर्गापुर
१०-१-८६	को	धनबाद के लिए प्रस्थान
११-१-८६ से १४-१-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम धनबाद पता—द्वारा ला० रामधनदास अग्रवाल बड़ी मुहल्ला पानी की टंकी के पास धनबाद
१५-१-८६	को	झरिया के लिए प्रस्थान
१५-१-८६ से २०-१-८६ तक		योग प्रचार कार्यक्रम झरिया पता—द्वारा बैजनाथ मटेसरिया शास्त्री नगर झरिया बिहार

इससे आगे का कार्यक्रम पृष्ठ ४८ पर पढ़िए

SIDDHAYOGA—Regd. No. L. AG. 008 Dec. 1985

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धयुक्त योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (मल्लादपुर) आगरा ।

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ....

....

....

....

श्रेष्ठ-पुरुष

श्रेष्ठ पुरुष—जीवमात्र के कल्याण में रत होकर, अपने चिन्तन मनन एवं कर्म द्वारा संसार के मनुष्यों के लिए एक आदर्श स्थापित करने वाला पुरुष श्रेष्ठ होता है । जन-समाज के हित में अपना सर्वस्व होम करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों का जीवन एक महायज्ञ होता है । वे समाज में व्याप्त दोष, पापाचार, भ्रष्टाचार और अन्याय के प्रतिरोध में, व्यक्तिगत राग-द्वेष एवं प्रतिशोध की भावना से विमुक्त होकर, अपना स्वर ऊँचा करके जन-जागरण करते हैं तथा अनेक कष्ट सहन करते हैं ।

—गीता